मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 32 • वर्ष 4 • अंक 4 • जून 2014 • पाँच रुपये • 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

मज़दूरों के लिए "अच्छे दिन" शुरू, भाजपा द्वारा श्रमिकों के अधिकारों पर पहला हमला 7

दुनियाभर में अमानवीय शोषण-उत्पीड़न के शिकार हैं प्रवासी कामगार 10

हड़तालों के बारे में - लेनिन 11

आने वाले दिनों के संकेत और सामने उपस्थित चुनौतियाँ

लुटेरे थैलीशाहों के लिए "अच्छे दिन" – मेहनतकशों और ग़रीबों के लिए "कड़े क़दम"!

सम्पादक मण्डल

'मोदी सरकार' के आते ही जिन अच्छे दिनों का शोर मचाया गया था, उनकी असलियत को अब आम लोग भी कुछ-कुछ समझने लगे हैं। बेशक़, ज़्यादा समझदार लोगों को इसे समझने में अभी वक़्त लगेगा। देशभर के तमाम बड़े पूँजीवादी घरानों से पाये हुए दस हज़ार करोड़ रुपये के चकाचौंध भरे चुनावी प्रचार के दौरान तूमार बाँधा गया था कि "अच्छे दिन बस आने वाले हैं"। तब कोई न कहता था कि इनके आने में अभी कई बरस लगेंगे। मगर सत्ता मिलते ही 'ख़ज़ाना ख़ाली है', 'दुनिया में आर्थिक संकट है', 'कड़े कदम उठाने होंगे' जैसी बातें शुरू हो गयी हैं। मानो पहले इनके बारे में कुछ पता ही नहीं था, जब जनता से लम्बे-चौड़े वादे किये जा रहे थे।

सिर्फ़ एक महीने के घटनाक्रम पर नज़र डालें तो आने वाले दिनों की झलक साफ़ दिख जाती है। एक ओर यह बिल्कुल साफ़ हो गया है कि निजीकरण-उदारीकरण की उन आर्थिक नीतियों में कोई बदलाव नहीं होने वाला है जिनका कहर आम जनता पिछले ढाई दशक से झेल रही है। बल्कि इन नीतियों को और ज़ोर-शोर से तथा कड़क ढंग से लागू करने की तैयारी की जा रही है। दूसरी ओर, संघ परिवार से जुड़े भगवा उन्मादी तत्वों और हिन्दुत्ववादियों के गुण्डा-गिरोहों ने जगह-जगह उत्पात मचाना शुरू कर दिया है। पुणे में राष्ट्रवादी हिन्दू सेना नामक गुण्डा-गिरोह ने सप्ताह भर तक शहर में जो नंगा नाच किया जिसकी परिणति मोहसिन शेख नाम के युवा इंजीनियर की बर्बर हत्या के साथ हुई, वह तो बस एक ट्रेलर है। इन दिनों शान्ति-सद्भाव और सबको साथ लेकर चलने की बात बार-बार दुहराने वाले नरेन्द्र मोदी या उनके गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने इस नृशंस घटना पर चुप्पी साध ली। मेवात, मेरठ, हैदराबाद आदि में साम्प्रदायिक दंगे हो चुके हैं और कई अन्य जगहों पर ऐसी हिंसा की घटनाएँ हुई हैं।

विरोध के हर स्वर को कुचल देने के इरादों का संकेत अभी से मिलने लगा है। केरल में एक कालेज की पत्रिका में नरेन्द्र मोदी का चित्र तानाशाहों की कतार में छापने पर प्रिंसिपल और चार छात्रों पर मुकदमा दर्ज करने का मामला पुराना भी नहीं पड़ा था कि उसी राज्य में नौ छात्रों को इसलिए गिरफ़्तार कर लिया गया क्योंकि उन्होंने पत्रिका में मोदी का मज़ाक उड़ाया था। दिल्ली में हिन्दी की एक युवा लेखिका को फेसबुक पर मोदी की आलोचना करने के कारण पहले भाजपा के एक कार्यकर्ता ने धमकियाँ दीं और जब वह उसके ख़िलाफ़ अदालत में गयीं तो मजिस्ट्रेट ने उल्टे उन्हीं को 'देशद्रोही' बताकर उनके विरुद्ध मुक़दमा दर्ज करा दिया। इलाहाबाद में छात्रों-युवाओं की लोकप्रिय दीवार पत्रिका 'संवेग' निकालने वाले ग्रुप को चुनाव के बाद से मोदी-समर्थकों की ओर से लगातार धमकियाँ दी जा रही हैं। ज़ाहिर है, यह तो केवल झाँकी है। जब इस सरकार का असली एजेण्डा लोगों के सामने आयेगा और इसकी नीतियों से बढ़ने वाली तबाही-बदहाली के विरुद्ध मेहनतकश लोग सड़कों पर उतरने लगेंगे तब ये सारे रामनामी दुशाले फेंककर नंगे दमन का सहारा लेंगे और लोगों को आपस में बाँटने के लिए जमकर धर्मोन्माद फैलायेंगे।

अभी तो मोदी सरकार का पहला एजेण्डा है पूँजीपतियों से किये गये अच्छे दिनों के वादों को जल्दी से जल्दी पूरा करना। इसमें वे बड़ी तेज़ी से जुट गये हैं। ऐलान कर दिया गया है – जनता बहुत से कड़े क़दमों के लिए तैयार हो जाये। नरेन्द्र मोदी का कहना है कि इन कड़े क़दमों के कारण समाज के

(पेज 8 पर जारी)

बर्बर सामूहिक बलात्कारों और यौन हिंसा की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि

स्त्री-विरोधी मानसिकता के विरुद्ध व्यापक जनता की लामबन्दी करके संघर्ष छेड़ना होगा!

पिछले लम्बे समय से स्त्री उत्पीड़न की विभिन्न घटनाएँ चर्चा में मौजूद हैं। अचानक स्त्री उत्पीड़न सम्बन्धी घटनाओं की मानो बाढ़ सी आ गयी है। ये नारी हिंसा के बर्बरतम और वीभत्सतम रूप के उदाहरण हैं। और ये कभी-कभार घटने वाली घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि यह आम चलन और प्रवृत्ति के रूप में समाज में मौजूद हैं। यह समाज में गहराई तक व्याप्त किसी गम्भीर रोग की सूचक है।

बदायूँ में दो दलित बहनों के साथ बलात्कार और हत्या करके उनके शवों को पेड़ से लटका देने की बर्बरतम घटना के बाद से लगातार लगभग हर दिन पूरे देश सहित प्रदेश के विभिन्न हिस्सों में स्त्रियों के साथ दरिन्दगी की घटनाएँ एक आम बात बन गयी हैं और इसमें गाँव-शहर के सवर्ण दबंगों सहित, पुलिस, नेता, अफ़सर तक शामिल हैं। केवल प्रदेश की ही बात करें तो मेरठ, लखीमपुर, मुज़फ़्फ़रनगर, बहराइच से लेकर बदायूँ तक स्त्रियों के शिकार का यह खेल निरन्तर जारी है और हिंस्र से हिंस्र होता जा रहा है। नेताओं और पुलिस अफ़सरों के बयान 'एक तो कोढ़ उस पर खाज' की कहावत को चरितार्थ करते अपराधियों के हौसले को बुलन्द कर रहे हैं।

सवाल यह उठता है कि आख़िरकार ऐसे बर्बर बलात्कार, हत्याओं और यौन अत्याचारों जैसी घटनाओं की संख्या बढ़ती क्यों जा रही है? इसे समझने के लिए हमें पितृसत्ता, पूँजीवादी राज्यसत्ता, पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली और यौनाचारवादी पतनशील पूँजीवादी संस्कृति के आपसी सहमेल से बने उस बर्बर परिदृश्य को समझना होगा जिसमें स्त्रियों के शिकार का यह खेल दिन-प्रतिदिन जारी है।

लैंगिक असमानता और स्त्री उत्पीड़न पूँजीवाद की आर्थिक बुनियाद में ही निहित है जो सभी रूपों का मूल कारण है। यह अकारण नहीं है कि स्त्री विरोधी बर्बरता में तेज़ वृद्धि पिछले दो-ढाई दशकों के दौरान नवउदारवाद की लहर अपने साथ पूँजी की मुक्त प्रवाह के साथ ही विश्व पूँजीवाद की रुग्ण संस्कृति की एक ऐसी आँधी लेकर आयी है जिसमें बीमार व रुग्ण मनुष्यता की बदबू भरी हुई है। हमारे देश में नयी व पुरानी प्रतिक्रियावादी रुग्णताओं का एक विस्फोटक मिश्रण तैयार हुआ है। भारतीय समाज में इस दो प्रकार की नयी व पुरानी संस्कृतियों के समागम से यह विकृत बर्बरतम घटनाएँ घटित हो रही हैं, जिसके उदाहरण हमें अनेकश: रूप में दिखायी दे रहे हैं। स्त्री उत्पीड़न की ये घटनाएँ गाँवों से लेकर महानगरों तक घट रही हैं।

नव उदारवाद के इस दौर में एक तेज़ पूँजीवादी विकास जो गाँवों से शहरों तक में हुआ है, उसने एक बीमार-रुग्ण मानस तैयार किया है। गाँवों में जो पूँजीवादी विकास हुआ है, उसमें जो नये भूस्वामी और कुलक हैं, वे प्राय: (सवर्ण जातियों के) पुराने भूस्वामियों और (मध्य जातियों के) पुराने धनी काश्तकारों के वंशज हैं। ये अपनी प्रकृति से ही

(पेज 9 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

दुनिया के मज़दूर भाई एक हो।

सभी मज़दूर भाइयों को इंक़लाबी लाल सलाम!

प्यारे मज़दूर भाइयो, आज भारत ही नहीं, बल्कि दुनिया के सभी देशों में मज़दूरों के हालात ठीक नहीं हैं। पूँजीवादी अपनी तानाशाही को बढ़ाते चले जा रहे हैं, जबकि जाति के नाम पर, धर्म तथा क्षेत्रवाद के नाम पर हम मज़दूरों में विभाजन कर अपनी तानाशाही क़ायम किये हुए हैं। इसमें ये पूँजीपति ही नहीं सरकार व पुलिस-प्रशासन इनका भरपूर सहयोग करते हैं तथा अपनी तानाशाही क़ायम रखते हैं। हाल ही में होण्डा, मारुति, रिको, श्रीराम पिस्टन जैसी कम्पनियों में मज़दूरों ने दमन के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी, जिसको दबाने के लिए पूँजीपतियों, सरकार तथा पुलिस-प्रशासन ने भरपूर कोशिश की, लेकिन मज़दूरों की आवाज़ को दबा न सके। इन आन्दोलन में हमारे कई मज़दूर भाइयों को जान की कुर्बानी तथा कई को जेल तक का सफ़र तय करना पड़ा, तो कई गम्भीर रूप से घायल भी हुए। इतना होने के बाद भी उन्होंने अपना संघर्ष जारी रखा।

प्यारे साथियो, अब समय आ गया है कि हम कारख़ानों में काम करने वाले ही नहीं, बल्कि हर क्षेत्र में कार्य करने वाला मज़दूर, चाहे वह इमारत बनाने वाला हो या फिर कार या मोटर साइकिल - सभी को मिलकर एक साथ पूँजीवाद के ख़िलाफ़ आवाज़ उठानी होगी, क्योंकि आजतक मज़दूरों की आवाज़ दबायी जाती थी। लेकिन अब दुनिया के मज़दूर एक हो रहे हैं और एक दिन पूँजीवाद को ख़त्म करके ही रहेंगे। मज़दूर राज क़ायम करके रहेंगे।

– **मनोज कुमार यादव**,
श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स
कामगार यूनियन (भिवाड़ी)

एक मज़दूर की ज़िन्दगी

मैं रामकिशोर (आजमगढ़ यू.पी.) का रहने वाला हूँ। गुड़गाँव की एक फ़ैक्टरी में काम करता हूँ। मुझे मज़दूर बिगुल अख़बार पढ़ना बहुत ज़रूरी लगता है, क्योंकि यह हम मज़दूरों की ज़िन्दगी की सच्चाई बताता है और इस घुटनभरी ज़िन्दगी से लड़ने का तरीक़ा बताता है, और मैं तो अपने बीवी-बच्चों को भी यह अख़बार पढ़कर सुनाता हूँ। मुझे ज़रूरी लगा इसलिए अपनी यह चिट्ठी 'मज़दूर बिगुल' कार्यालय में सम्पादक जी को भेज रह हूँ।

मैं तीन साल से गुड़गाँव में काम कर रहा हूँ और जैसे-तैसे ज़िन्दगी की गाड़ी खींच रहा हूँ। मेरे चार छोटे बच्चे हैं, तीन लड़कियाँ और एक लड़का। पहले मैं अपने सगे, सम्बन्धियों के साथ अकेले गुड़गाँव आया था और दिन-रात मेहनत करके अपने बीवी-बच्चों के लिए गाँव में अपने बड़े भाई के पास रुपये भेजता था। पिछले साल मैं अपने बीवी-बच्चों को भी गुड़गाँव ले आया। अब पति, पत्नी व 4 बच्चों के लिए पाँच हज़ार रुपये की तनख़्वाह बहुत कम है। मेरे दिन-रात ओवरटाइम लगाने के बाद भी मैं अपने बच्चों को दूध व अच्छा खाना नहीं खिला सकता था। इसलिए पाँच महीने पहले मजबूरी में मैंने अपनी पत्नी को भी ज़बरदस्ती फ़ैक्टरी भेजना शुरू किया, क्योंकि इसके अलावा मेरे पास और कोई रास्ता नहीं था। लोगों ने बहुत उल्टा-सीधा कहा, नाक, मूँछों और मर्यादा का ख़याल दिलाया। मगर आर्थिक मदद नहीं की, इसलिए मैंने यही निर्णय किया कि नाक, मूँछें जो कटें तो कटती रहें, कोई बात नहीं मगर मेरे बीवी-बच्चे अच्छी तरह ज़िन्दगी बितायें। अब ओवरटाइम लगाकर करीब 6500 रुपये मैं और आठ घण्टे के 4500 रुपये मेरी पत्नी तनख़्वाह उठा लेते हैं और तब जाकर मुश्किल से अपने बच्चों को दूध, खाना व कपड़े दे पाता हूँ। अभी सबसे छोटा लड़का डेढ़ साल का ही है, उसको माँ की गोद की ज़रूरत है। मगर मेरी यह मजबूरी है। मैं यह सीख गया हूँ कि यह दौलतवालों की सरकार मेरे किसी काम की नहीं है। मज़दूरों की भी अपनी सरकार होनी चाहिए जो मज़दूरों की ज़िन्दगी में ख़ुशहाली ला सके।

– **रामकिशोर**,
गुड़गाँव, अनाज मण्डी

मज़दूर बिगुल यहाँ से प्राप्त करें :

दिल्ली : मज़दूर पाठशाला, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर (योगेश) 09289498250; वज़ीरपुर (सनी) 09873358124; पीरागढ़ी (नवीन) 08750045975; शहीद भगतसिंह लाइब्रेरी, ए ब्लॉक, शाहबाद डेयरी, फ़ोन – 09971158783

गुड़गाँव : (अजय) 09540436262, (राजकुमार) 09919146445

लुधियाना : मज़दूर पुस्तकालय, राजीव गाँधी कालोनी, फ़ोकल प्वाइण्ट थाने के पास, फ़ोन – 09646150249

चण्डीगढ़ : (मानव) 09888808188

लखनऊ : जनचेतना, डी-68, निराला नगर, फ़ोन – 0522-2786782, (सत्यम) 08853093555

गोरखपुर : जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, फ़ोन – 09455920657

इलाहाबाद : (प्रसेन) 08115491369

पटना : (विशाल) 09576203525

सिरसा : डॉ. सुखदेव हुन्दल की क्लिनिक, सन्तनगर, फ़ोन – 09813192365

मुम्बई : नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवीं मुम्बई, फ़ोन – 09619039793

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

एक बेहद ज़रूरी बिगुल पुस्तिका

फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?

प्रकाशक: राहुल फ़ाउण्डेशन
पृष्ठ: 64, मूल्य 20 रुपये
अपनी प्रति डाक से मँगाने के लिए सम्पर्क करें:
जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
फोन: 0522-2786782, 8853093555
ईमेल: info@janchetnabooks.org
वेबसाइट: **janchetnabooks.org**

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट
आप यहाँ देख सकते हैं:
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकायें उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी- चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782
- जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)
- जाफ़रा बाज़ार, गोरखपुर-273001
- जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09971158783
- जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित)

वज़ीरपुर स्टील उद्योग के गरम रोला के मज़दूर

फिर से जुझारू संघर्ष की राह पर

दिल्ली के वज़ीरपुर औद्योगिक इलाक़े के 26 गरम रोला (हॉट रोलिंग) कारख़ानों के करीब 1600 मज़दूर 'गरम रोला मज़दूर एकता समिति' के नेतृत्व में पिछले 6 जून से हड़ताल पर हैं। मज़दूरों की माँग है कि सभी श्रम क़ानूनों को सख़्ती से लागू किया जाये।

वज़ीरपुर स्टील की बहुत बड़ी इण्डस्ट्री है। यहाँ पर लोहे को पिघलाकर और ढालकर बर्तन और स्टील का अन्य सामान बनाया जाता है। काम करने की परिस्थितियाँ बेहद अमानवीय हैं। लोहा पिघलाने की भट्ठियों के पास खड़े होकर और स्टील की बेहद धारदार पत्तियों के बीच मज़दूरों को काम करना पड़ता है। मज़दूरों को न श्रम क़ानूनों के तहत मिलने वाले कोई लाभ नसीब होते हैं और न ही काम करने की जगह पर सुरक्षा का ही कोई इन्तज़ाम होता है। ऐसे में मज़दूर अपने श्रम अधिकारों को हासिल करने के लिए गरम रोला मज़दूर एकता समिति के नेतृत्व में हड़ताल पर हैं। यूनियन के साथी रघुराज का कहना है कि पिछले साल 2013 में भी हड़ताल हुई थी जिसमें कुछ चीजें हासिल हुई थी। किन्तु हर साल 1500 रुपये मज़दूरी बढ़ाने और पी.एफ़., ईएसआई देने से फ़ैक्टरी मालिक मुकर गये। ऐसे में मज़दूरों को फिर से हड़ताल पर उतरना पड़ा। गरम रोला मज़दूर एकता समिति से जुड़े सनी सिंह ने बताया कि श्रम विभाग से मज़दूरों का शोषण छिपा नहीं है, बल्कि श्रम क़ानूनों के लागू न होने का एक सबसे बड़ा कारण खुद श्रम विभाग की उदासीनता है। इलाक़े में नीमड़ी कॉलोनी में श्रम विभाग का दफ़्तर है, किन्तु उनकी नाक के नीचे मज़दूरों का शोषण बदस्तूर जारी है। मज़दूरों को न तो दिल्ली सरकार द्वारा तय न्यूनतम मज़दूरी मिलती है और न ही ओवरटाइम का डबल रेट से भुगतान होता है। ठेकेदारी प्रथा के तहत हज़ारों मज़दूर सालों-साल से काम कर रहे हैं। ऐसे में श्रम विभाग को चाहिए कि वह इस पूरे मामले में हस्तक्षेप करे और श्रम क़ानूनों को सख़्ती से लागू कराये। गरम रोला मज़दूरों की कमेटी के एक मज़दूर बाबूराम का कहना था कि यह हड़ताल तब तक जारी रहेगी जब तक उनके क़ानूनी हक़ हासिल नहीं कर लिये जाते।

मौजूदा संघर्ष की शुरुआत बाकायदा तैयारी के साथ की गयी थी। जून के आरम्भ में ही इलाक़े में हड़ताल की सुगबुगाहट होने लगी थी। फिर 4 जून को पूरे इलाक़े में पर्चे बाँटते हुए व्यापक हड़ताल का आह्वान किया गया। 6 जून को पूरे औद्योगिक इलाक़े को बन्द करवाते हुए व्यापक रैली निकाली गयी। स्टील लाइन से जुड़े तमाम अन्य पेशों जैसे ठण्डा रोला, सर्किल, तेज़ाब, तैयारी, फुडाई और पैकिंग के मज़दूरों का भी हड़ताल में शामिल होने का आह्वान किया गया। 9 जून को परचा वितरण व प्रचार करते हुए 10 जून को फिर से इलाक़े में विशाल रैली का आयोजन किया गया, जिसमें पूरे औद्योगिक क्षेत्र के 7000 मज़दूर शामिल हुए। इसके बाद 12 जून को विभिन्न सरकारी महक़मों में ज्ञापन सौंपा गया। मज़दूरों के आन्दोलन के दबाव में 14 जून को श्रम विभाग की तरफ़ से गरम रोला के सभी 26 कारख़ानों के मालिकों को गरम रोला मज़दूर एकता समिति के प्रतिनिधिमण्डल के साथ वार्ता के लिए बुलाया गया था। इसमें कोई कारख़ाना मालिक नहीं पहुँचा, बल्कि उन्होंने अपने एक मैनेजर को भेज दिया, जिसे श्रम विभाग ने बैरंग लौटा दिया और सभी फ़ैक्टरियों में श्रम क़ानूनों के उल्लंघन की जाँच का निर्देश दिया और मज़दूरों को काम पर जाने के लिए कहा। किन्तु मज़दूर बिना माँगों को माने काम पर जाने के लिए राजी नहीं हुए और हड़ताल पर डटे हुए हैं। हर रोज़ मज़दूर वज़ीरपुर औद्योगिक इलाक़े के राजा पार्क में गर्मजोशी के साथ सभा करते हैं और अपनी आवाज़ को अन्य मज़दूरों तक पहुँचाने का संकल्प लेते हैं। हड़ताल सभा की शुरुआत 'जारी है हड़ताल' नामक गीत के साथ होती है। मज़दूर किसी भी तरह से मालिकों और मैनेजमेण्ट के सामने झुकने के लिए तैयार नहीं हैं। उनका कहना है कि भले ही मालिक आज समझौते की टेबल पर आने के लिए तैयार न हों, किन्तु देर-सबेर उन्हें हमारी जायज़ क़ानूनी माँगों को मानना ही पड़ेगा।

रोज़ विभिन्न मज़दूर कार्यकर्ता और अलग-अलग संगठनों के प्रतिनिधि सभा में इस आन्दोलन के समर्थन में अपनी बात रखते हैं। स्त्री मज़दूर संगठन की बेबी कुमारी ने अपनी बात में रखा कि हमें महिला मज़दूरों को भी अपने संघर्ष में साथ लेना होगा, ताकि हमारा संघर्ष और भी ताक़त के साथ आगे बढ़ सके। उन्होंने दिल्ली के करावल नगर के बादाम मज़दूरों के आन्दोलन में महिला मज़दूरों की भागीदारी का हवाला देते हुए बताया कि महिला मज़दूरों ने हर संघर्ष में किस तरह से पुरुष मज़दूरों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्ष लड़ा। दिल्ली कामगार यूनियन के नवीन ने अपनी बात में ट्रेड यूनियन के सम्बन्ध में आम बातें रखते हुए बताया कि ट्रेड यूनियन के संघर्षों में सभी मज़दूरों को भागीदारी करनी चाहिए तथा कोई भी आन्दोलन सामूहिकता के दम पर ही जीता जा सकता है, साथ ही संगठन में वित्तीय पारदर्शिता का भी पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। उन्होंने देशभर में चले बड़े मज़दूर आन्दोलनों के सम्बन्ध में भी मज़दूरों के साथ अपनी बात साझा की। गरम रोला मज़दूर एकता समिति के मज़दूर साथी अम्बिका ने कहा कि हमें अपनी सभा को जोश के साथ चलाना होगा और सभी मज़दूर इस हड़ताल में शिरकत करें। उन्होंने आगे कहा की हड़ताल में सभी मज़दूर न सिर्फ़ पार्क में बैठें, बल्कि मज़दूर वर्ग की इस पाठशाला का इस्तेमाल वर्ग चेतन होने के लिए करें। करावल नगर मज़दूर यूनियन के योगेश ने कहा कि इस हड़ताल पर ठण्डा रोला, स्टील लाइन, रिक्शा के मज़दूर भी उम्मीद लगाये बैठे हैं, इस हड़ताल में जीत पूरे वज़ीरपुर के मज़दूरों की जीत होगी और यह अन्य मज़दूरों को भी संघर्ष के रास्ते पर उतरने का रास्ता दिखायेगी। हर रोज़ सभा का समापन मज़दूर हड़ताल को मज़बूत बनाने व इसे जीतकर ही उठने की शपथ लेकर करते हैं। बिगुल मज़दूर दस्ता की सांस्कृतिक टोली 'एक कथा सुनो रे लोगो', 'जारी है हड़ताल', 'यूनियन हमारी एकता', 'रउरा सासना के बाटे ना जवाब', 'हम मेहनतकश' और 'हल्ला बोल' जैसे गीतों के माध्यम से सभा की जीवन्तता बरकरार रखती है।

इस हड़ताल का सबसे बड़ा सकारात्मक पहलू यह है कि 26 फ़ैक्टरियों के मज़दूरों ने हर कारख़ाने की कमेटी बनाकर इस हड़ताल का संचालन किया, जो ट्रेडयूनियन जनवाद की मिसाल है। यह हमारी इस लड़ाई का सकारात्मक पहलू है। अब गरम रोला मज़दूरों को इन सकारात्मक अनुभवों को आगे बढ़ाते हुए क्या करना होगा? बिगुल मज़दूर दस्ता का यह मानना है कि गरम रोला मज़दूर एकता समिति को अपने संघर्ष को गरम रोला के साथ ही स्टील लाइन से जुड़े तमाम अन्य पेशों जैसे ठण्डा रोला, सर्किल, तेज़ाब, तैयारी, फुडाई और पैकिंग व वज़ीरपुर इलाक़े की सभी फ़ैक्टरियों के मज़दूरों के साथ जोड़ना होगा। 700 कारख़ानों में मज़दूरों की ज़्यादातर माँगें समान हैं। वज़ीरपुर इलाक़े के मज़दूर उधम सिंह पार्क, शालीमार बाग़ व सुखदेव नगर की झोपड़पट्टियों में रहते हैं और यहाँ मज़दूरों की आवास, पानी व अन्य साझा माँगें भी बनती हैं। इसलिए गरम रोला के संघर्ष को और भी जीवन्त तरीक़े से अन्य पेशों के मज़दूरों के साथ जोड़ने की ज़रूरत है। इन सभी माँगों को समेटने और इस लड़ाई को व्यापक बनाने का काम एक इलाक़ाई यूनियन ही कर सकती है। और वैसे भी गरम रोला मज़दूर एकता समिति किसी एक कारख़ाने की यूनियन नहीं है, बल्कि इसमें 26 कारख़ानों के मज़दूर संगठित हैं, बस इसे विस्तारित करने की ज़रूरत है।

मज़दूर हर रोज़ औद्योगिक इलाक़े के राजा पार्क में अपनी सभा चलाते हैं, जहाँ विभिन्न संगठनों से जुड़े मज़दूर कार्यकर्ता और मानवाधिकार संगठन भी समर्थन के लिए आते हैं। हड़ताल के समर्थन के लिए बिगुल मज़दूर दस्ता, करावल नगर मज़दूर यूनियन, दिल्ली कामगार यूनियन, गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति, विहान सांस्कृतिक टोली, पीयूडीआर, पीयूसीएल, ह्यूमन राइट लॉ नेटवर्क आदि संगठन व दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर प्रभु महापात्रा व कुछ छात्र भी लगातार शिरकत कर रहे हैं। यह रिपोर्ट लिखे जाने तक मज़दूरों का संघर्ष लगातार जारी है।

– बिगुल संवाददाता

कारखाना इलाक़ों से

आग उगलती गर्मी में भी श्रीराम पिस्टन के मज़दूरों का संघर्ष जारी!

भिवाड़ी स्थित श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स के मज़दूर पिछले 15 अप्रैल से अपनी लम्बी हड़ताल जारी किये हुए है। लगभग 60 दिनों से आग उगलती गर्मी में मज़दूर पहले 10 दिन फ़ैक्टरी के अन्दर डेरा जमाये हुए थे और फिर 26 अप्रैल को कम्पनी में हुए बर्बर लाठीचार्ज के बाद कम्पनी गेट पर बैठे हुए हैं। ज्ञात हो कि इस दमन की कार्रवाई में राजस्थान पुलिस ने 26 नेतृत्वकारी मज़दूरों को ज़बरदस्ती गिरफ़्तार करके उन पर हत्या के प्रयास व अन्य कई गम्भीर धाराएँ लगी दीं। फिर भी मज़दूरों ने बर्बर दमन के ख़िलाफ़ अपना संघर्ष जारी रखा।

बिना थके संघर्ष में जुटे रहे मज़दूर!

श्रीराम पिस्टन में काफ़ी मज़दूर दूसरे प्रदेशों (हरियाण, यूपी, बिहार, मध्यप्रदेश आदि) या राजस्थान के दूर के ज़िलों से हैं, जो कम्पनी के आस-पास भिवाड़ी, खुशखेड़ा या धारूहेड़ा में किराये के कमरों में रहते हैं। इसलिए यूनियन द्वारा तय किया गया कि सभी मज़दूर घर नहीं जायेंगे और धरना-स्थल पर जुटे रहेंगे। यूनियन ने हड़ताल स्थल पर ही सामूहिक रसोई का प्रबन्ध किया है, जिसमें मज़दूर टीमें बारी-बारी से भोजन बनाती हैं। साथ ही रोज़ सुबह स्थानीय मज़दूर अपने घरों से भोजन तैयार कर लाते हैं, ताकि संघर्ष कमजोर न पड़े। मज़दूरों की आपसी एकजुटता दिखाती है कि मालिक-सरकार मज़दूर के बीच कितनी ही क्षेत्र, धर्म या भाषा की दीवारें खड़ी करें, लेकिन मज़दूर अपने संघर्ष से सीखते हैं कि उनकी असली ताक़त वर्ग एकजुटता में ही है।

श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स कामगार यूनियन की माँगें हैं : 26 गिरफ़्तार मज़दूरों को तुरन्त रिहा किया जाये; मज़दूरों पर दर्ज सभी झूठी एफ़.आई.आर रद्द की जायें व पूरी घटना की उच्चस्तरीय जाँच करवायी जाये; निकाले गये सभी मज़दूरों को तत्काल काम पर लिया जाये; सामूहिक माँगपत्र की माँगें मानी जाये। साथ ही यूनियन का रजिस्ट्रेशन तुरन्त किया जाये व प्रबन्धकों की अप्रत्यक्ष दख़लअन्दाज़ी बन्द की जाये।

लेकिन राजस्थान सरकार और श्रम विभाग मज़दूरों की इन जायज़ माँगों पर अन्धा-गूँगा-बहरा बना हुआ है। श्रीराम पिस्टन मैनेजमेण्ट लगातार मज़दूरों की हड़ताल को तोड़ने की सारी तीन-तिकड़म कर रहा है। पहले कम्पनी ने मज़दूरों को सेवा समाप्ति-पत्र भेजकर डराने की कोशिश की। फिर कम्पनी ने अख़बारों के माध्यम से अपील जारी की कि "श्रीराम पिस्टन एण्ड रिंग्स एक परिवार है, जिसे कुछ बाहरी तत्व तोड़ रहे हैं। इसलिए आप परिवार के मज़दूर वापस काम पर आ जाओ, हम उत्पादन शुरू कर रहे हैं"। कम्पनी द्वारा ऐसी पाँच अपीलें निकली जा चुकी हैं। लेकिन मज़दूर भी जानते हैं कि संघर्ष के इस दौर में बिना यूनियन के मज़दूर वापस काम पर जाते हैं तो उनकी हालात पहले से भी बुरी होगी। वैसे भी 7000-8000 रुपये में मज़दूर कहीं भी काम कर लेंगे, लेकिन सिर झुकाकर कम्पनी में नहीं जायेंगे। श्रीराम पिस्टन मैनेजमेण्ट को आज मज़दूर परिवार का हिस्सा नज़र आ रहे हैं, लेकिन 26 अप्रैल को सुबह 4 बजे जब सोते मज़दूरों पर सैकड़ों बाउंसरों व पुलिस ने लाठियों, चाकुओं, रॉडों से हमला किया था, तब मैनेजमेण्ट को परिवार के मज़दूरों का ख़याल नहीं आया। साफ़ है कि हड़ताल ने मज़दूरों को दिखा दिया कि उनका "उपकारी" मालिक तो भेड़ की खाल ओढ़े भेड़िया है।

श्रम विभाग द्वारा बुलायी गयी बैठकों में भी मैनेजमेण्ट का रुख़ मनमर्जी का रहा। शुरुआती कई बैठकों में यूनियन के प्रतिनिधि मौजूद रहे, लेकिन मैनेजमेण्ट अनुपस्थित रहा। असल बात यह है कि आज देश के शासक वर्ग के लिए कल्याणकारी राज्य की ज़रूरत ख़त्म हो गयी, इसलिए चाहे भाजपा की वसुन्धरा सरकार हो या कांग्रेस की हुड्डा सरकार, सबकी नीति एक है कि कैसे पूँजीपतियों के मुनाफ़े के लिए सारे श्रम-क़ानूनों को ताक पर रख दिया जाये। इसलिए मज़दूरो को भी समझ आ रहा है कि चुनावी नौटंकी में साँपनाथ या नागनाथ बदलने से मज़दूरों के हालात नहीं बदलने वाले।

- बिगुल संवाददाता

*बिगुल मज़दूर दस्ता के **अभिनव** ने कहा - गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल से लेकर भिवाड़ी और खुशखेड़ा तक के कारख़ानों में लाखों मज़दूर आधुनिक गुलामों की तरह खट रहे हैं। लगभग हर कारख़ाने में अमानवीय वर्कलोड, ज़बरन ओवरटाइम, वेतन में कटौती, ठेकेदारी, यूनियन अधिकार छीने जाने जैसे साझा मुद्दे हैं। हमें यह समझना होगा कि आज अलग-अलग कारख़ाने की लड़ाइयों को जीत पाना मुश्किल है। अभी हाल ही में हुए मारुति सुजुकी आन्दोलन से सबक लेना भी ज़रूरी है जो अपने साहसपूर्ण संघर्ष के बावजूद एक कारख़ाना-केन्द्रित संघर्ष ही रहा। मारुति सुजुकी मज़दूरों द्वारा उठायी गयीं ज़्यादातर माँगें – यूनियन बनाने, ठेका प्रथा ख़त्म करने से लेकर वर्कलोड कम करने – पूरे गुड़गाँव से लेकर बावल तक की औद्योगिक पट्टी के मज़दूरों की थीं। लेकिन फिर भी आन्दोलन समस्त मज़दूरों के साथ सेक्टरगत/इलाक़ाई एकता क़ायम करने में नाकाम रहा और केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों का पुछल्ला बना रहा। इसलिए हमें समझना होगा कि हम कारख़ानों की चौहद्दियों में क़ैद रहकर अपनी माँगों पर विजय हासिल नहीं कर सकते, क्योंकि हरेक कारख़ाने के मज़दूरों के समक्ष मालिकान, प्रबन्धन, पुलिस और सरकार की संयुक्त ताक़त खड़ी होती है, जिसका मुकाबला मज़दूरों के बीच इलाक़ाई और सेक्टरगत एकता स्थापित करके ही किया जा सकता है, जैसाकि बांगलादेश के टेक्सटाइल मज़दूरों ने कर दिखाया है। गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति के **अजय** ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि आज हमें एक ओर सेक्टरगत यूनियनें (जैसेकि समस्त ऑटोमोबाइल मज़दूरों की एक यूनियन, समस्त टेक्सटाइल मज़दूरों की एक यूनियन, आदि) बनानी होंगी जो कि समूचे सेक्टर के मज़दूरों को एक साझे माँगपत्रक पर संगठित करें। वहीं हमें समूचे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल-भिड़ावी-खुशखेड़ा इलाके के मज़दूरों की एक इलाकाई मज़दूर यूनियन भी बनानी होगी, जो कि इस इलाके में रहने वाले सभी मज़दूरों की एकता कायम करती हो, चाहे वे किसी भी सेक्टर में काम करते हों। ऐसी यूनियन कारख़ानों के संघर्षों में सहायता करने के अलावा, रिहायश की जगह पर मज़दूरों के नागरिक अधिकारों जैसेकि शिक्षा, पेयजल, चिकित्सा आदि के मुद्दों पर भी संघर्ष करेगी। जब तक सेक्टरगत और इलाक़ाई आधार पर मज़दूरों के ऐसे व्यापक और विशाल संगठन नहीं तैयार होंगे, तब तक उस नग्न तानाशाही का मुकाबला नहीं किया जा सकता है, जोकि राजस्थान व हरियाणा में मज़दूरों के ऊपर थोप दी गयी है।*

गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति और बिगुल मज़दूर दस्ता ने श्रीराम पिस्टन के मज़दूरों के समर्थन में नुक्कड़ नाटक व क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये। मज़दूरों के जुझारू संघर्ष में गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति और बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ता लगातार हड़ताल स्थल पर डटे रहे। और 18 मई मज़दूर के हौसला बढ़ने के नुक्कड़ नाटक "मशीन" का मंचन किया। जिसमें कारख़ानों में मज़दूर के शोषण और संघर्ष की कहानी है। "साथी" टोली ने यूनियन एकजुटता बनाये रखने के लिए पीटर सीगर के गीत का हिन्दी रूपान्तरण "यूनियन हमारी ताक़त" व अन्य कई गीत प्रस्तुत किये।

बैक्सटर मेडिसिन कम्पनी में यूनियन बनाने के लिए मज़दूरों का संघर्ष!

गुड़गाँव के आईएमटी मानसेर में दवा कम्पनी बैक्सटर मेडिसिन ने 27 मई 2014 को बिना किसी पूर्व सूचना के 'ए' शिफ़्ट में ड्यूटी पर आये मज़दूरों में से 17 नेतृत्वकारी मज़दूरों को निलम्बन का पत्र पकड़ा दिया। कम्पनी की तानाशाही के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने संघर्ष का रास्ता चुना और अपने बाहर निकाले गये साथियों की बहाली के लिए एकजुट होकर प्रशासन के दरवाज़े पर दस्तक दी।

बैक्सटर कम्पनी के मज़दूरों के हालात और संघर्ष की शुरुआत

अमेरिका की बैक्सटर मेडिसिन कम्पनी ख़ासकर किडनी की महँगी दवाएँ बनाती हैं। पूरे विश्व में इसकी लगभग 54 शाखाएँ हैं। भारत में गुड़गाँव, मानेसर के अतिरिक्त महाराष्ट्र के औरंगाबाद और चेन्नई में इसके तीन प्लाण्ट हैं।

बैक्सटर लिमिटेड प्लाण्ट नम्बर 183, सेक्टर-5, आईएमटी मानेसर गुड़गाँव में लगभग 302 स्थाई मज़दूर, जिसमें एक तिहाई संख्या महिला मज़दूरों की है, पिछले 11 साल से काम कर रहे हैं। आज भी कुछ मज़दूरों को छोड़कर सबकी तनख़्वाह 8000 रुपये के लगभग ही है। जो मज़दूर साल-छः महीने पहले आये हैं, उनकी तनख़्वाह 5700 रुपये है। इस अन्याय और लूट के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने यूनियन बनाने का फ़ैसला किया और 3 सितम्बर 2013 को यूनियन रजिस्टेशन के लिए लेबर कोर्ट में फ़ाइल लगाने के बाद ही एक महीने के अन्दर 47 मज़दूरों को (जिसमें 5 महिला मज़दूर भी थी) बिना बताये गेट पर ही रात के 12 बजे ट्रान्सफ़र लेटर पकड़ा दिया गया, बालुज, औरंगाबाद के प्लाण्ट में शिफ़्ट होने के लिए। मज़दूरों ने दूसरे प्लाण्ट में जाने से साफ़ मना कर दिया और लेबर कोर्ट में अनफ़ेयर लेबर प्रैक्टिस का केस लड़ा, जिसमें कोई हल नहीं निकला। मजबूरन पहली बार मज़दूरों ने 18 फ़रवरी 2014 को कम्पनी में हड़ताल की। कम्पनी मैनेजमेण्ट को मज़दूरों के आगे झुकना पड़ा और 19 फ़रवरी को समझौता हुआ कि 3 मार्च तक सभी मज़दूरों को काम पर वापस लिया जायेगा।

इन 47 मज़दूरों की 6 महीने ज़बरन छुट्टी का इनको कोई मुआवज़ा नहीं दिया। ऊपर से अर्जित अवकाश (ईएल) व बोनस भी काट लिया गया। इसके बाद 21 मई को यूनियन के सक्रिय कार्यकर्ता, कैशियर अशोक को कम्पनी ने सस्पेण्ड कर दिया और साथ में मारपीट भी की। मज़दूरों के विरोध करने पर कम्पनी प्रशासन ने ग्राम पंचायत के लोगों को बुलाया, जिसके बाद गाँव के स्थानीय लोग लाठी-डण्डे लेकर आये और मज़दूरों के साथ धक्का-मुक्की व गाली-गलौच की।

मैनेजमेण्ट के लोग महिला मज़दूरों को ट्रेनिंग के नाम पर होटलों में बुलाते हैं और जो महिला मज़दूर नहीं जाती हैं, उनकी तनख़्वाह काट लेते हैं। अभी पिछले दिनों ही भिवाड़ी में एक होटल बुक करके तीन दिनों के लिए कुछ लड़कों व लड़कियों को ट्रेनिंग के लिए बुलाया। लड़कियों ने सुरक्षा की दृष्टि से या अन्य कारणों से जाने से मना कर दिया तो उनका 3 दिन का वेतन काट लिया गया। मज़दूरों की यूनियन न बन पाये इसलिए 27 तारीख़ को 17 नेतृत्वकारी मज़दूरों को कम्पनी ने निकाल दिया। और मैनेजमैण्ट ने कम्पनी गेट पर यह परचा चिपका दिया कि इन 18 मज़दूरों को छोड़कर जो इस अण्डरटेकिंग फ़ार्म पर साइन करेगा, वह काम कर सकता है। इसमें लिखा है कि मैं अपनी मर्जी से, खुशी से बिना बैर-भाव के काम करूँगा और अगर ग़लती करता हूँ तो कम्पनी मेरे ख़िलाफ़ कोई भी ऐक्शन ले सकती है।

प्लाण्ट मैनेजर चेतन ठक्कर और ऑपरेशन मैनेजर विकास सिंह ने कम्पनी मालिक को यह आश्वासन दिया कि आप चिन्ता न करें, हमे 10 दिन का समय दें, हम यह यूनियन का चक्कर ख़त्म करके, नयी भर्ती करेंगे और प्रोडक्शन बढ़ाकर देंगे। अब सड़क से लड़कों को पकड़-पकड़कर भर्ती किया जा रहा है। और पूरे कुशल काम में बेगार करायी जा रही है।

27 मई को 17 मज़दूरों को सस्पेण्ड करने के बाद मज़दूरों ने आन्दोलन का रास्ता चुना। मज़दूर कड़ी धूप में दिनभर गेट पर ही बैठे रहे। 28 मई को वे ए.एल.सी. के पास सोहना चौक गुड़गाँव गये। वहाँ ए.एल.सी. ने पुलिस को बुलाकर सभी 300 मज़दूरों को उठवा दिया। 29 को मज़दूरों ने डी.एल.सी. को ज्ञापन देकर अपनी समस्या बतायी। डी.एल.सी. ने भी लुभावनी बातें करके आश्वासन दिया और मामले की खानापूर्ती की। उसके बाद से सभी महिला व पुरुष मज़दूर कम्पनी गेट पर ही धरना दे रहे हैं। 10 जून को बैक्सटर के मज़दूरों ने अपनी यूनियन का झण्डा फ़ैक्टरी गेट पर लगाया और अपनी एकजुटता का ज़बरदस्त प्रदर्शन किया।

- गुड़गाँव संवाददाता

नांगलोई और मंगोलपुरी में मज़दूर माँगपत्रक अभियान की नये सिरे से शुरुआत

उत्तर-पश्चिम दिल्ली के नांगलोई जाट और मंगोलपुरी क्षेत्र में 27 और 28 मई को कारख़ानों के विभिन्न पेशों के मज़दूरों का माँगपत्रक बनाकर अभियान चलाया गया।

नांगलोई जाट विधानसभा क्षेत्र में उद्योगनगर और डी.आई.डी.सी. दिल्ली सरकार द्वारा घोषित औद्यागिक इलाक़ा है। इसके अलावा निहाल विहार, नांगलोई, ज्वालापुर में मज़दूरों की रिहायश है। वहाँ भी छोटी-छोटी बहुत-सी फ़ैक्टरियाँ हैं। मंगोलपुरी में भी दो घोषित औद्योगिक इलाक़े हैं, मंगोलपुरी औद्योगिक क्षेत्र फ़ेस-1 व 2; मंगोलपुरी रिहायशी इलाक़े में भी छोटी-छोटी बहुत-सी फ़ैक्टरियाँ हैं। इन दोनों औद्योगिक क्षेत्रों में ज़्यादातर पीवीसी का जूता-चप्पल बनाने का काम होता है। इसके अलावा ऑटो पार्ट्स, प्लास्टिक के सामान, गारमेण्ट, दवा आदि की भी फ़ैक्टरियाँ हैं। इन फ़ैक्टरियों में ज़्यादातर काम ठेका या पीस रेट पर होता है। अधिकांश फ़ैक्टरियों में 10 से 12 घण्टे का कार्यदिवस है। वेतन के नाम पर हेल्पर पुरुष को 4000-4500 रुपये प्रतिमाह और माहिल मज़दूर को 3500-4000 रुपये मिलते हैं। अप्रैल से दिल्ली सरकार ने काग़ज़ों पर न्यूनतम वेतन बढ़ा दिया है (अकुशल को 8554 रुपये और कुशल को 10374 रुपये प्रतिमाह) जबकि मिलता इसका आधा है। कार्यस्थल पर सुरक्षा के कोई पुख़्ता इन्तज़ाम नहीं हैं, इसी कारण आये दिन फ़ैक्टरियों में आग लगती रहती है और मज़दूर अपनी ज़िन्दगी गँवाते रहते हैं। अभी हाल में मुण्डका की एक प्लास्टिक फ़ैक्टरी में आग लगी, जिसमें एक मज़दूर की जलकर मौत हो गयी और कई अन्य मज़दूर बुरी तरह जल गये। आग लगने के बाद फ़ैक्टरी मालिक के गुण्डों ने मज़दूरों को परिवार सहित इलाक़े से भगा दिया। इलाक़े में आग लगने की घटनाएँ होती रहती हैं और ज़्यादातर मामलों को मालिक और स्थानीय पुलिस-श्रम विभाग मिलकर दबा देते हैं।

ऐसी गुलामों जैसी ज़िन्दगी में मज़दूर अलग-अलग कुछ नहीं कर सकता है और न ही एक फ़ैक्टरी के 50-100 मज़दूर कुछ कर सकते हैं। इसलिए दिल्ली कामगार यूनियन और उद्योग नगर मज़दूर यूनियन ने इलाक़े के सभी मज़दूरों का संयुक्त माँगपत्र बनाकर अभियान की शुरुआत की है, ताकि पूरे औद्योगिक क्षेत्र के मज़दूरों की साझा माँगों जैसे न्यूनतम वेतन, ठेका प्रथा समाप्त करने, डबल रेट से ओवरटाइम, पीएफ़ व ईएसआई आदि पर मज़दूरों को एकजुट किया जा सके।

अभियान की शुरुआत 28 मई को सुबह उद्योग नगर से की गयी। मज़दूरों के माँगपत्रक का परचा निकालकर छोटी-छोटी नुक्कड़ सभाएँ करते हुए परचे बाँटे गये। 29 मई को मंगोलपुरी औद्योगिक क्षेत्र फ़ेस-1 में भी ऐसा ही अभियान चलाया गया। उद्योग नगर में काम करने वाले मज़दूर ज़्यादातर ठेका या पीस रेट पर काम करते हैं, जहाँ इनका भयंकर शोषण होता है। आठ-दस सालों से काम कर रहे मज़दूरों को भी नियुक्ति पत्र, पहचान कार्ड व वेतन पर्ची नहीं दी जाती। पी.एफ़ व ई.एस.आई. तथा बोनस व सामाजिक सुरक्षा से वे वंचित हैं। राजधानी दिल्ली में सरकार द्वारा तय न्यूनतम वेतन तक मज़दूरों को नहीं मिलता है। पाँच-दस दिन काम करके जाने वाले मज़दूर को ठेकेदार एक पैसा भी नहीं देता है। अक्सर ठेकेदार काम में घाटा दिखाकर कई मज़दूरों का पैसा हड़प लेता है। परचा वितरण के दौरान कई मज़दूरों ने इन घटनाओं का ज़िक्र किया। कहने को तो इलाक़े में एटक और सीटू जैसी केन्द्रीय यूनियनें मौजूद हैं, लेकिन ये भी मज़दूरों को ठगने और बीच-बीच में रस्मअदायगी करने का ही काम करती हैं। इसके अलावा छोटी-छोटी यूनियनें भी हैं जो अपनी दुकान खोलकर बैठी हैं और मज़दूरों को ठगने और लूटने का काम कर रही हैं। इसलिए बहुत से मज़दूर यूनियन नाम सुनकर ही भागते हैं। मालिक और ठेकेदार भी यूनियन के ख़िलाफ़ दुष्प्रचार करते रहते हैं।

मंगोलपुरी में कार्यस्थल पर सुरक्षा की हालत उद्योग नगर से भी बदतर हैं। बहुत-सी फ़ैक्टरियों की इमारतें बहुत जर्जर हैं। यहाँ ज़्यादातर जूते-चप्पल की फ़ैक्टरियाँ हैं। मंगोलपुरी विधानसभा क्षेत्र से आम आदमी पार्टी की विधायक राखी बिड़ला हैं, लेकिन मज़दूरों के साथ होने वाले भ्रष्टाचार और अन्याय पर वे चुप रहती हैं। मंगोलपुरी मज़दूर यूनियन और दिल्ली कामगार यूनियन ने मज़दूरों के बीच कहा कि चुनावी पार्टियाँ तथा नक़ली ट्रेड यूनियनें मज़दूरों के संघर्ष को रोकने का काम करती हैं। इसलिए मज़दूरों को अपनी इलाक़ाई एकता क़ायम करके ही हक़-अधिकार मिल सकते हैं। उद्योग नगर मज़दूर यूनियन और मंगोलपुरी मज़दूर यूनियन इलाक़े के मज़दूरों की एकजुट करने का प्रयास कर रही हैं। अधिकांश फ़ैक्टरियों में मज़दूरों की एक जैसी समस्याएँ हैं, इसलिए इलाक़े के मज़दूरों को साझा माँगपत्रक बनाकर एकजुट किया जा सकता है और मज़दूरों की जुझारू यूनियन बनायी जा सकती है।

– नवीन

एहरेस्टी के मज़दूरों की एकजुटता तोड़ने के लिए बर्बर लाठीचार्ज

एहरेस्टी इण्डिया प्रा. लि. के बावल प्लाण्ट में 31 मई शाम 4 बजे हरियाणा पुलिस ने तीन दिनों से शान्तिपूर्वक फ़ैक्टरी के भीतर धरने पर बैठे मज़दूरों पर लाठीचार्ज किया। असल घटना की शुरुआत 29 मई को हुई, जब कम्पनी ने बिना नोटिस दिये कम्पनी में उत्पादन बन्द करा दिया। और साथ ही कम्पनी में 'ए' शिफ़्ट की बस सर्विस बन्द कर दी। जिसके बाद मज़दूरों ने फ़ैक्टरी में डेरा जमा लिया और अपने संघर्ष की शुरुआत की।

कम्पनी की इस तानाशाही का कारण मज़दूरों की यूनियन थी जो एक महीने पहले ही 30 अप्रैल को बनायी गयी थी। यूनियन पंजीकरण के लिए कम्पनी यूनियन के नेतृत्व को लगातार डराने-धमकाने का काम कर रही थी। इस कड़ी में कम्पनी ने 30 मज़दूरों का ज़बरदस्ती तबादला करने का आदेश दिया, जिसके ख़िलाफ़ मज़दूरों ने एक दिन की हड़ताल कर आदेश को रद्द करवा दिया। इसलिए कम्पनी में उत्पादन ठप्प करके मज़दूरों की एकता तोड़ने की कोशिश की गयी, लेकिन यूनियन ने इसका ज़ोरदार जवाब दिया और ठेका मज़दूरों को भी साथ लेकर 29 मई से प्लाण्ट के भीतर ही हड़ताल जारी रखी। मज़दूरों की एकजुटता को तोड़ने और प्लाण्ट ख़ाली करवाने के लिए कम्पनी ने 31 मई को हरियाणा पुलिस से साँठगाँठ कर मज़दूरों पर बर्बर लाठीचार्ज करवाया, जिसमें 30 से ज़्यादा मज़दूरों को गम्भीर चोटें आयी हैं। इस बर्बर दमन ने साफ़ कर दिया है कि चाहे भाजपा की वसुन्धरा सरकार या कांग्रेस की हुड्डा सरकार, वे तो बस पूँजीपतियों के हितों को सुरक्षित करने का काम कर रहे हैं। गुड़गाँव श्रम-विभाग भी गूँगा-बहरा बना बैठा है, तभी मज़दूरों के लिए काग़ज़ों पर दर्ज 260 श्रम-क़ानूनों को खुलेआम मालिक-ठेकेदार तोड़ते हैं, लेकिन उन पर कोई कार्यवाही नहीं होती है, लेकिन मज़दूरों के आन्दोलन को दबाने के लिए सरकार को सारे क़ानून याद आ जाते हैं।

4 जून को बावल में एहरेस्टी और पास्को इण्डिया स्टील प्रोसेसिंग सेण्टर प्राइवेट लिमिटेड के मज़दूरों ने रेवाड़ी डी.सी. ऑफ़िस पर प्रदर्शन कर अपने जायज़ हक़ों के लिए आवाज़ उठायी। गुड़गाँव मज़दूर संघर्ष समिति मज़दूरों पर हुई इस दमन की कार्रवाई के ख़िलाफ़ संघर्षरत बावल के मज़दूरों के साथ है। दूसरे, एहरेस्टी कम्पनी की घटना ने फिर साफ़ कर दिया है कि पूरे गुड़गाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल से लेकर भिवाड़ी तक के मालिक-सरकार, पुलिस-प्रशासन नंगे तौर पर मज़दूरों की क़ानूनी माँगों को दबाने में एक साथ हैं। इसलिए हमें भी अपनी इलाक़ाई एकजुटता बनाकर पूँजीपतियों और सरकार को मुँहतोड़ जवाब देना होगा।

एहरेस्टी कम्पनी के मज़दूरों के हालात के बारे में जानकारी

एहरेस्टी कम्पनी में लगभग 650 मज़दूर कार्यरत हैं जिनमें से 350 मज़दूर स्थायी हैं, बाक़ी 300 मज़दूर ठेके पर कार्यरत हैं। यह कम्पनी मारुति, होण्डा आदि कार कम्पनियों की वेण्डर कम्पनी है, जो एल्मीनियम डाई कास्टिंग, कवर, सिलेण्डर ब्लॉक और केस ट्रांसमिशन बनाती है। कम्पनी में स्थायी मज़दूरों का वेतन 7200 रुपये है, जबकि ठेका मज़दूरों को सिर्फ़ 5500 रुपये मिलते हैं।

– बिगुल संवाददाता

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी के नाम मज़दूरों का खुला पत्र

नरेन्द्र मोदी,
प्रधानमन्त्री,
भारत सरकार

नरेन्द्र मोदी जी, आपने 26 मई को प्रधानमन्त्री पद की शपथ ली, जिसके बाद टी.वी. चैनलों पर शोर मच गया है कि भारत के विशाल लोकतन्त्र में एक चाय बेचने वाला मज़दूर प्रधानमन्त्री के आसन पर बैठ गया। हमें याद है कि चुनाव जीतने के बाद गुजरात में हुए अपने पहले भाषण में आपने कहा था कि आप भारत के मज़दूर नम्बर 'वन' हैं। लेकिन शपथ समारोह में अम्बानी बन्धु से लेकर अदानी जैसे उद्योगपतियों को देखकर हमारे ज़ेहन में कुछ सवाल आये। उम्मीद है, आप उनका लिखित में उत्तर देंगे।

पहला, क्या वाक़ई देश के उद्योगपति देश की बागडोर किसी मज़दूर के हाथ में देने के लिए 10 हज़ार करोड़ रुपये ख़र्च करेंगे। (अख़बारों से हमें पता चला है कि आपके चुनाव प्रचार पर इतना ख़र्चा आया।) हम तो अपनी ज़िन्दगी से जानते हैं कि मालिकों-पूँजीपतियों की नज़र में मज़दूर की एक ही हैसियत होती है, कोल्हू के बैल की तरह खटकर मालिकों की तिजोरियाँ भरना। सभी पूँजीपतियों का एक ही मूलमन्त्र है सस्ते से सस्ता मज़दूर ख़रीदो और महँगे से महँगा माल बेचो।

दूसरा, चुनाव के दौरान देश के सभी मीडिया चैनलों पर आपका बम्पर प्रचार आया। ऐसे में सवाल है कि क्या मीडिया अकेले मोदी जैसे मज़दूर को ही दिखाना चाहता है, जबकि देश की 55 करोड़ मज़दूर आबादी आधुनिक गुलामों की तरह खट रही है, रोज़ाना देश में दर्जनों मज़दूर औद्योगिक दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं, मज़दूरों-किसानों के आन्दोलनों पर लाठी-गोली चलवायी जाती है, तब यह मीडिया क्यों अन्धा-गूंगा-बहरा बन जाता है, इसका आपके पास क्या जवाब है?

ख़ैर, हम जानते हैं कि आपके लिए सवाल कुछ टेढ़े हैं। इसलिए हम मज़दूर आपके समक्ष कुछ माँगे रख रहे हैं कि अगर आप 'वाक़ई' मज़दूर नम्बर 'वन' होने का दम भरते हैं तो इन माँगों पर तरन्तु कार्रवाई करें –

1. प्रधानमन्त्री पद के लिए आपने जिस संविधान की शपथ ली, उसी संविधान के तहत हम मज़दूरों के लिए 260 श्रम क़ानून बने हुए हैं। लेकिन अफ़सोस की बात है कि आज़ादी के 66 साल बाद भी श्रम क़ानून सिर्फ़ काग़ज़ों की शोभा बढ़ाते हैं, असल में मज़दूरों को न तो न्यूनतम मज़दूरी मिलती है न ही पीएफ़, ईएसआई की सुविधा। पूरे देश में ठेका प्रथा लागू करके मज़दूरों को आधुनिक गुलाम बना लिया गया है। इन सारे श्रम क़ानूनों का उल्लंघन करने वाले फ़ैक्टरी मालिक या व्यापारी किसी न किसी चुनावी पार्टी से जुड़े हुए हैं या करोड़ों का चन्दा देते हैं, बाक़ी ख़ुद भाजपा के कई सांसदों, विधायकों, पार्षदों की फ़ैक्टरियाँ हैं जहाँ श्रम क़ानूनों की सरेआम धज्जियाँ उड़ायी जाती हैं। ऐसे में क्या आप या भाजपा इनके ख़िलाफ़ मज़दूर हितों के लिए कोई संघर्ष चलाने वाले हैं?

2. आपने काले धन के लिए एस.आई.टी. बनायी है लेकिन मज़दूर होने के नाते क्या आपको नहीं पता कि देश के पूँजीपति, व्यापारी हर साल अरबों रुपये मज़दूरों के न्यूनतम वेतन, पी.एफ़. व ई.एस.आई. का हड़प ले जाते हैं। क्या आप मज़दूरों की इस लूट के ख़िलाफ़ कोई एस.आई.टी. या कोई टास्क फ़ोर्स बनायेंगे?

3. यूँ तो आप गाँधी जी के प्रदेश से आते हैं, लेकिन क्या आप गाँधी के विचारों को भी अपने ऊपर लागू करते हैं? जैसे गांधी की सादगी जग-जाहिर थी, लेकिन आपके पूरे चुनाव प्रचार से लेकर शपथ लेने तक हुए भव्य आयोजनों को देखकर नहीं लगता कि आप सादगी में यकीन करते हैं। ख़ैर, इससे ज़्यादा ज़रूरी बात यह है कि गाँधी ने 2 मार्च 1930 को तत्कालीन अंग्रेज़ वायसराय को लिखे अपने लम्बे पत्र में ब्रिटिश शासन को सबसे महँगी व्यवस्था बताते हुए उसे जनविरोधी और अन्यायी करार दिया था। उनके इस सवाल की कसौटी पर जब हम आज के भारत की संसदीय शासन प्रणाली को कसते हैं, तो पाते हैं कि एक तरफ़ देश की 77 फ़ीसदी जनता 20 रुपये रोज़ पर गुज़ारा कर रही है, दूसरी तरफ़ जनप्रतिनिधि कहलाने वाले 543 सांसदों पर हर पाँच वर्ष में 8 अरब 55 लाख रुपये ख़र्च कर दिये जाते हैं। आज आपको प्रति माह सिर्फ़ वेतन के रूप में 1 लाख 60 हज़ार रुपये मिलते हैं जबकि हम मज़दूर पूरे माह, रोज़ाना 12 घण्टे खटने के बावजूद सिर्फ़ 6000-7000 कमा पाते हैं। क्या आप अमीर-गरीब की इस चौड़ी होती खाई को पाटने के लिए कुछ कर सकते हैं? वरना दुनिया का सबसे महँगा यह जनतन्त्र जनता की छाती पर पहाड़ के समान है।

ये कुछ बुनियादी सवाल हैं जिनको हम आपके समक्ष रख रहे है। उम्मीद है आप शीघ्र, हमें उत्तर देंगे।

मज़दूर कार्यकर्ताओं द्वारा जारी,
गुड़गाँव

हरियाणा के नरवाना में निर्माण मज़दूरों ने संघर्ष के दम पर जीती हड़ताल

आज के समय पूरे देश में मज़दूर-मेहनतकश अपने हक़-अधिकारों के प्रति एकजुट हो रहे हैं। अभी हाल में ही हरियाणा राज्य के नरवाणा के मज़दूरों ने अपने हक़ों-अधिकारों के प्रति जागरूक होते हुए एक हड़ताल की और अपनी एकजुटता और संघर्ष के दम पर जीत हासिल की। प्रस्तुत है, उक्त संघर्ष और नरवाणा शहर की पृष्ठभूमि पर एक छोटी-सी रिपोर्ट :-

हरियाणा के ज़िला जीन्द की तहसील नरवाना शहरीकरण की तरफ़ बढ़ती हुई जगह है। यहाँ की आबादी करीब 62,000 है। शहर में मज़दूर-मेहनतकश व ग़रीब किसान आबादी का ही प्रतिशत सबसे ज़्यादा है, किन्तु ख़ुशहाल किसान, नौकरीशुदा खाता-पीता मध्यवर्ग और पुस्तैनी रूप से रह रहे व्यापारी-दुकानदार भी काफ़ी तादाद में हैं। चूँकि नरवाना तहसील है तो आस-पास के गाँवों से भी लोग यहीं पर ख़रीदारी आदि के लिए आते हैं। नरवाना में एक बड़ी अनाज मण्डी भी है, जो गाँवों से व्यापक किसान आबादी को भी अपने साथ जोड़ती है। शहर में बड़ी संख्या में आस-पास के गाँवों से मज़दूर दिहाड़ी-रोज़गार के लिए आते हैं। ये मज़दूर विभिन्न जातियों से होते हैं किन्तु भूमिहीन दलित इनमें बड़ी संख्या में होते हैं। कृषि में हो रहे पूँजीवादी विकास और किसानों के विभेदीकरण के फलस्वरूप किसान आबादी भी मज़दूरों में शामिल हो रही है और इससे हरियाणा के बन्द लगने वाले समाज में जाति-भेद के टूटने में भी मदद मिल रही है जो एक सकारात्मक बात भी है। ये मज़दूर दूकानों, अनाज मण्डी, छोटे-मोटे वर्कशॉपों और भवन निर्माण के क्षेत्र में काम करते हैं। मज़दूरों के हालात बेहद दयनीय हैं। इन्हें बेहद कम मज़दूरी मिलती है और हरियाणा सरकार द्वारा तय न्यूनतम मज़दूरी, जो पहले ही कम है (अकुशल 5341 रुपये व कुशल 5861 रुपये), इनके लिए बहुत दूर की कौड़ी है। श्रम क़ानूनों का अधिकतर मज़दूरों को कुछ पता ही नहीं है। मज़दूरी पूरी तरह से मालिकों के रहमो-करम पर तय होती है। इण्टक जो पूरी तरह से कांग्रेस की पूँछ है, और संशोधनवादी पार्टी सी.पी.एम. से जुड़ी सीटू से सम्बद्ध कई यूनियनें संगठित मज़दूरों के बीच काम करती हैं। आमतौर पर इनका काम अपनी पार्टियों के लिए वोट बैंक जुटाना और कुछ अर्थवादी कवायदें करना ही होता है। शहर में काम कर रहे असंगठित क्षेत्र से जुड़े मज़दूरों से इन्हें कोई मतलब नहीं है। मज़दूरों के अन्दर इन हालातों के कारण गुस्सा और क्षोभ तो होता है किन्तु ये संगठित न होने

के कारण कुछ कर नहीं पाते। ख़ासकर भवन निर्माण से जुड़े मज़दूरों के हालात तो और भी दयनीय हैं, क्योंकि एक तो कार्यस्थिति बेहद ख़राब होती है, धूल-धक्कड़ में और बिना किसी सुरक्षा के ही काम करना पड़ता है, ऊपर से मज़दूरी बेहद कम मिलती है। हर रोज़ काम मिलने की भी कोई गारण्टी नहीं होती। अक्सर ही ऐसे मज़दूर काफ़ी संख्या में होते हैं जो किराया लगाकर शहर में आते हैं और पूरे दिन काम का इन्तज़ार करने के बाद बिना कोई काम किये ही ख़ाली हाथ घर लौट जाते हैं। एक तरफ़ लगातार बढ़ती मँहगाई ने और दूसरी तरफ़ बेहद कम मज़दूरी ने मज़दूरों का जीना मुहाल करके रख दिया है।

अभी पिछले अप्रैल माह की 15 तारीख़ को भवन निर्माण क्षेत्र से जुड़े कुछ मज़दूरों ने अपनी मज़दूरी बढ़वाने के लिए बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा से जुड़े कार्यकर्ताओं से सलाह-मशविरा किया। इन मज़दूरों का काम ट्राली-ट्रक इत्यादि से सीमेण्ट, बजरी, रेती आदि उतारने और लादने का होता है। मज़दूरी बेहद कम और पीस रेट के हिसाब से मिलती है। ज्ञात हो कि नौजवान भारत सभा और बिगुल मज़दूर दस्ता पिछले लगभग दो साल से हरियाणा में सक्रिय हैं। युवाओं से जुड़े तथा विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर प्रचार आदि के कारण और पिछले दिनों चले मारुति सुजुकी मज़दूर आन्दोलन में बिगुल मज़दूर दस्ता की भागीदारी के कारण इन संगठनों की इलाक़े में पहचान है। बिगुल और नौभास के कार्यकर्ताओं ने निर्माण क्षेत्र से जुड़े मज़दूरों की तुरन्त यूनियन बनाने और यूनियन के तहत ही संगठित रूप से हड़ताल करने का सुझाव दिया। 15 तारीख़ को ही निर्माण मज़दूर यूनियन की तरफ़ से पर्चा छपवा दिया गया और सभी मज़दूरों को एकजुट करके हड़ताल करने का निर्णय लिया गया। उसी दिन यूनियन की 11 सदस्यीय कार्यकारी कमेटी का चुनाव भी कर लिया गया। पहले दिन काम बन्द करवाने को लेकर कई मालिकों के साथ कहा-सुनी और झगड़ा भी हुआ, किन्तु अपनी एकजुटता के बल पर यूनियन ने हर जगह काम बन्द करवा दिया। 16 तारीख़ को यूनियन ने नौभास और बिगुल मज़दूर दस्ता की मदद से पूरे शहर में पर्चा वितरण और हड़ताल का प्रचार किया। मज़दूरों के संघर्ष और जुझारू एकजुटता के सामने 16 तारीख़ को ही दोपहर में मालिकों यानी भवन निर्माण से जुड़ी सामग्री बेचने वाले दुकानदारों ने हाथ खड़े कर दिये। मज़दूरी में किसी सामग्री में 100 तो किसी में 50 प्रतिशत तक की बढ़ोत्तरी हुई। जैसे पहले सीमेण्ट का एक कट्टा 1.25 से 1.50 रुपये तक में उतारा और लादा जाता था, हड़ताल के बाद इसका रेट न्यूनतम 2.50 रुपये तय हुआ। रेती की ट्राली उतारने और लादने का रेट 60-70 से बढ़कर 130 रुपये न्यूनतम तय हुआ। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार की भवन निर्माण सामग्री के उतारने और लादने के रेटों में बढ़ोत्तरी हुई। जीत हासिल होने पर मज़दूर बेहद उत्साह में थे और मालिक मनमानी न चलने और आगे से अधिक मज़दूरी देने को लेकर खिसियाये हुए दिखे। इसके बाद 17 तारीख़ को ही यूनियन की तरफ़ से इस आन्दोलन की जीत का पर्चा निकाला गया और विभिन्न मज़दूरों के बीच इसे बाँटा गया। यूनियन की कार्यकारिणी की बैठक में यह फ़ैसला हुआ कि अब औपचारिक रूप से यूनियन की सदस्यता दी जानी चाहिए। इसके साथ ही रसीद-बुक आदि से यूनियन की औपचारिक सदस्यता का काम शुरू हो चुका है तथा यूनियन अपना एक सदस्यता शिविर लगा भी चुकी है, जिसमें करीब 90 मज़दूरों ने यूनियन की सदस्यता ग्रहण की। जैसे ही गेहूँ की कटाई का सीजन ख़त्म होगा, क्योंकि बहुत से मज़दूर कटाई के काम में भी लगे हैं, फिर से सदस्यता शिविर लगाये जायेंगे। इस पूरे संघर्ष ने दिखला दिया है कि संघर्ष के सही तरीक़े और एकजुटता के बल पर ही अपने हक़-अधिकारों की लड़ाई जीती जा सकती है। मज़दूरों की एकजुटता और नौजवान भारत सभा जैसे जन संगठन और बिगुल मज़दूर दस्ता की सक्रिय भागीदारी और दबाव के कारण पुलिस-प्रशासन चाहकर भी मालिकों की मदद नहीं कर सका। विभिन्न मौक़ों पर मालिको को ही झुकना पड़ा; और तो और पुलिस थाने में भी मालिकों को मज़दूरों से माफ़ी माँगनी पड़ी। यूनियन के सचिव रमेश खटकड़ ने बताया कि निर्माण मज़दूर यूनियन की लड़ाई भले ही छोटी लड़ाई थी, किन्तु इसी प्रकार से यानी संघर्ष की सही दिशा और एकजुटता के बल पर ही हम पूरे देश के स्तर पर बड़े संघर्षों को भी जीत सकते हैं। और आज यह समय की ज़रूरत है कि तमाम ग़द्दार ट्रेड यूनियनों को खदेड़ बाहर किया जाये और एक नये ट्रेड यूनियन आन्दोलन की शुरुआत को और भी तेज़ कर दिया जाये, ताकि मेहनतकश आबादी एकजुट हो और अपने हक़-हुक़ूक़ को हासिल करे। आज के समय मालिकों और उन्हें सुरक्षा देने वाली मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था और साथ ही मज़दूरों के रहनुमा बनने वाले घाघ धन्धेबाजों को हम अपनी एकजुटता और संघर्ष के सही तरीक़ों से ही पछाड़ सकते हैं।

नरवाणा में बिगुल मज़दूर दस्ता और निर्माण मज़दूर यूनियन ने मिलकर एक मई के अवसर पर व्यापक पर्चा वितरण करते हुए रैली का भी आयोजन किया। यह रैली शहर के पुराने बस अड्डे से शहीद भगतसिंह चौक तक निकाली गयी। रैली का समापन जनसभा के साथ किया गया। सभा को सम्बोधित कर रहे वक्ताओं ने मई दिवस के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए इसके महत्व के बारे में बताया कि किस प्रकार से काम के घण्टे आठ का आन्दोलन मज़दूरों की एकजुटता और संघर्ष का प्रतिक बन गया था। आज के समय मुनाफ़े की व्यवस्था के ख़िलाफ़ एकजुट संघर्ष की तैयारी ही मई दिवस के शहीदों की सच्ची याददिहानी हो सकती है। शाम के समय निर्माण मज़दूर यूनियन के कार्यालय पर बिगुल मज़दर दस्ता द्वारा बनाई फिल्म का प्रदर्शन भी किया गया। इसके अलावा हरियाणा के ही ज़िला कैथल के कलायत में भी व्यापक पर्चा वितरण करते हुए मज़दूर साथियों तक मई दिवस का सन्देश पहुँचाया गया।

- बिगुल संवाददाता

नारकीय जीवन जीने को मजबूर हैं निर्माण उद्योग में काम करने वाले मज़दूर

सन् 1991 में निजीकरण, उदारीकरण की नीतियाँ लागू होने के बाद से भारत के निर्माण क्षेत्र में तेज़ी से वृद्धि हुई है। विदेशी कम्पनियों को ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के अवसर प्रदान करने के लिए जगह-जगह विश्व-स्तरीय एक्सप्रेसवे, फ़्लाईओवर तथा बाँधों का जाल बिछाया जा रहा है। इसके अलावा खाते-पीते मध्यवर्ग को तमाम सुख-सुविधाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से शॉपिंग मॉल, लक्ज़री अपार्टमेण्ट आदि का निर्माण किया जा रहा है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार इस समय भारत में तकरीबन साढ़े चार करोड़ मज़दूर निर्माण उद्योग में कार्यरत हैं। इनमें से ज़्यादातर संख्या झारखण्ड, बिहार, राजस्थान, बंगाल, मध्य प्रदेश जैसे पिछड़े हुए राज्यों से अलग-अलग कारणों के कारण विस्थापित हुए मज़दूरों की है, जो रोजी-रोटी कमाने के लिए हर साल हज़ारों की तादाद में दिल्ली, मुम्बई जैसे महानगरों का रुख़ करते हैं। निर्माण मज़दूरों में लगभग आधी संख्या स्त्रियों की है।

इस क्षेत्र में काम करने वाली मज़दूर आबादी ठेके पर बेहद कम मज़दूरी पर तथा बिना किसी सामाजिक सुरक्षा के अमानवीय जीवन जीने को मजबूर है। कार्यस्थल पर सुरक्षा के पुख़्ता इन्तज़ाम न होने के कारण हर दिन मज़दूरों के साथ कोई न कोई दुर्घटना होती रहती है, जिनमें कई बार उन्हें अपनी जान तक से हाथ धोना पड़ता है। इसके अलावा हर समय धूल-भरे वातावरण में काम करने के कारण, आवश्यक सुरक्षा उपकरणों के अभाव, और आस-पास फैली गन्दगी के कारण मज़दूरों को कई जानलेवा बीमारियाँ अपना शिकार बना लेती हैं। लेकिन चूँकि मज़दूरों को अलग-अलग ठेकेदारों के माध्यम से काम पर रखा जाता है, और उनके पास रोज़गार सम्बन्धी कोई भी रिकॉर्ड नहीं होता है। इसलिए अगर कोई दुर्घटना हो जाती है तो मालिक और ठेकेदार पुलिस के साथ मिल मज़दूर के परिवार को डरा-धमकाकर या थोड़ी सी रक़म देकर पूरे मामले को वहीं ख़त्म कर देते हैं। "बिल्डिंग और अन्य निर्माण मज़दूर कल्याण एक्ट 1966" के अनुसार नियोक्ता को किसी मज़दूर को अपने यहाँ काम पर रखने से पहले उसका पंजीकरण करवाना आवश्यक होता है, ताकि बीमारी आदि के समय उन्हें उचित स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान की जा सकें तथा मृत्यु होने पर उनके परिवारों को उचित मुआवज़ा मिल सके। इसी एक्ट की अन्य धाराओं के अनुसार - 8 घण्टे कार्य दिवस, ओवरटाइम का दोगुनी दर से भुगतान, महिला मज़दूरों के बच्चों के लिए पालनघर तथा रहने की जगहों पर शौचालय और साफ़-सफ़ाई के उचित प्रबन्ध होने चाहिए।

यह तो हुई काग़ज़ों में लिखे हुए क़ानूनों की बात, पर असलियत तो यह है कि इस क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों का कोई कार्यदिवस होता ही नहीं है और उनसे 15-16 घण्टे रोज़ाना जबरन काम करवाया जाता है, ओवरटाइम का पैसा तो दूर इन्हें न्यूनतम मज़दूरी भी नहीं दी जाती है। महिलाओं के हालात तो इससे भी बदतर हैं, उनके साथ शारीरिक शोषण की घटनाएँ आम बात हैं, जिनकी कहीं भी कोई सुनवाई नही होती, बहुत ज़्यादा काम और उचित मात्रा में पौष्टिक आहार न मिलने के कारण ज़्यादातर महिलाएँ कुपोषण की शिकार हैं।

आज भारत की कुल मज़दूर आबादी में से 93 प्रतिशत आबादी असंगठित क्षेत्र में काम करती है। ख़ुद को मज़दूरों का हिरावल बताने वाली सी.पी.आई, सी.पी.आई.(एम), और सी.पी.आई. (माले) जैसी संशोधनवादी नक़ली लाल-झण्डे वाली संसदीय वामपन्थी पार्टियों ने इस विशाल आबादी को संगठित करने की न तो कोई कोशिश की है और न ही उनसे आगे कोई उम्मीद की जा सकती है। कुछ सुधारवादी, अर्थवादी संगठन उनके बीच जगह-जगह काम कर रहे हैं। इसलिए क्रान्तिकारी मज़दूर संगठन के सामने इस आबादी को संगठित करते हुए वर्गीय एकता क़ायम करना एक चुनौती है।

- मनन

मज़दूरों के लिए "अच्छे दिन" शुरू,

भाजपा द्वारा श्रमिकों के अधिकारों पर पहला हमला

'मज़दूर बिगुल' के पन्नों पर पहले ही कहा गया था कि पूँजीवाद के ढाँचागत संकट के चलते आने वाले दिनों में नवउदारवादी नीतियों को और भी दमनकारी ढंग से लागू किया जायेगा, जिसकी सबसे पहले और सबसे बुरी मार मज़दूर वर्ग पर पड़ेगी। श्रम क़ानूनों को ज़्यादा से ज़्यादा बेअसर करने की तरकीबें गढ़ी जायेंगी और मज़दूर यूनियनों तथा अन्य मज़दूर संगठनों का काम करना मुश्किल बनाया जायेगा। भाजपाइयों को पूँजीपतियों की सेवा करने की इतनी जल्दी है कि केन्द्र में सत्ता में आने के दो सप्ताह के भीतर ही उन्होंने इस बात को सही साबित करना शुरू कर दिया है। राजस्थान की भाजपा सरकार ने फ़ैक्टरी एक्ट 1948, इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट एक्ट 1947 और ठेका क़ानून 1971 को संशोधित करके पहले से ही कमजोर श्रम क़ानूनों पर हमला बोलने की शुरुआत कर दी है।

फ़ैक्टरी एक्ट के लागू होने की शर्त के रूप में अब मज़दूरों की संख्या को दोगुना कर दिया है। अब फ़ैक्टरी एक्ट 20 या इससे ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल होता हो) तथा 40 या इससे ज़्यादा मज़दूरों (जहाँ बिजली का इस्तेमाल न होता हो) वाली फ़ैक्टरियों पर ही लागू होगा। इस तरह सीधे-सीधे बड़ी संख्या में छोटे फ़ैक्टरी मालिकों को फ़ैक्टरी एक्ट से बाहर कर दिया गया है। मगर उन पर अब और कौन सा एक्ट लागू होगा, यह कुछ पता नहीं है और सम्भवत: यह कभी पता चलेगा भी नहीं। दूसरी तरफ़, इस संशोधन ने एक मालिक के लिए अलग-अलग खाते दिखाकर फ़ैक्टरी एक्ट से बचना बहुत आसान कर दिया है।

मज़दूरों के लिए यूनियन बनाना और भी मुश्किल कर दिया गया है। पहले किसी फ़ैक्टरी में काम करते मज़दूरों का कोई ग्रुप अगर कुल मज़दूरों की संख्या का 15 प्रतिशत अपने साथ ले लेता तो वह यूनियन पंजीकृत करवा सकता था, अब इसे बढ़ाकर 30 प्रतिशत कर दिया गया है। मतलब साफ़ है कि अगर फ़ैक्टरी मालिक ने अपनी फ़ैक्टरी में दो-तीन दलाल यूनियनें पाल रखी हैं तो एक नयी यूनियन बनाना बहुत कठिन होगा और फ़ैक्टरी जितनी बड़ी होगी, यूनियन बनाना उतना ही मुश्किल होगा। ठेका एक्ट भी अब 20 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होने की जगह 50 या इससे ज़्यादा मज़दूरों वाली फ़ैक्टरी पर लागू होगा। इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट एक्ट 1947 में संशोधन करते हुए अब कम्पनियों को 300 या इससे कम मज़दूरों को निकाल बाहर करने के लिए सरकार से अनुमति लेने से छूट दे दी गयी है, पहले यह संख्या 100 थी। इस संशोधन से यह भी तय है कि अब किसी पूँजीपति को अपनी ऐसी फ़ैक्टरी जिसमें 300 से कम मज़दूर काम करते हैं, को बन्द करने के लिए सरकार से पूछने की ज़रूरत नहीं है। फ़ैक्टरी से जुड़े किसी झगड़े को श्रम अदालत में ले जाने के लिए पहले कोई समय-सीमा नहीं थी, अब यहाँ भी तीन साल की सीमा तय कर दी गयी है।

और बेशर्मी की हद यह है कि ये सब "रोज़गार" पैदा करने तथा कामगारों की काम के दौरान दशा सुधारने तथा सुरक्षा बढ़ाने के नाम पर किया जा रहा है। सरकार का कहना है कि इससे ज़्यादा निवेश होगा तथा ज़्यादा नौकरियाँ पैदा होंगी। असल में कहानी रोज़गार बढ़ाने की नहीं, बल्कि पूँजीपतियों को मज़दूरों की लूट करने के लिए और ज़्यादा छूट देने की है। ये तो अभी शुरुआत है, श्रम क़ानूनों को ज़्यादा से ज़्यादा बेअसर बनाने की कवायद जारी रहने वाली है और पूरे भारत में यही होने वाला है। राजस्थान सरकार के इन संशोधनों का केन्द्र सरकार कोई विरोध नहीं करने वाली और राष्ट्रपति तो है ही रबड़ की स्टैम्प। वैसे भी प्रणब मुखर्जी भी तो पूँजीपतियों के "हमदर्द" ही हैं। राजस्थान सरकार द्वारा किये गये संशोधनों के पीछे-पीछे दूसरे राज्य (चाहे सरकार किसी भी पार्टी की हो) भी यही करेंगे, क्योंकि उनके पास भी "रोज़गार" पैदा करने जैसे बहाने मौजूद हैं तथा इससे वे सहमत भी हैं। यदि उन्हें अपने यहाँ पूँजी को रोके रखना है तो अन्य राज्य राजस्थान से भी आगे बढ़कर ज़्यादा मज़दूर-विरोधी संशोधन करेंगे। इस सबके बीच पूँजी का कुल्हाड़ा मज़दूर वर्ग के ऊपर और ज़ोर से चलेगा। बहरहाल पूँजीपति ख़ुश हैं, कई मुँह छुपाके मुस्करा रहे हैं, तो कई जैसे मारुति सुज़ुकी इण्डिया लिमिटेड के चेयरमैन आर.सी. भार्गव, सरेआम हँस रहे हैं कि "इस दिशा (मतलब श्रम क़ानून ख़त्म करने की दिशा) में हरकत शुरू हुई है" और साथ ही नयी डिमाण्ड भी पेश कर रहे हैं कि "फ़ैक्टरी बन्द करनी है तो करनी है", मतलब कि उन्हें फ़ैक्टरी से 300 मज़दूर निकालने या फ़ैक्टरी बन्द करने वाला संशोधन अभी भी कम लग रहा है। इसके लिए ऐसा क़ानून होना चाहिए कि फ़ैक्टरी से मज़दूरों को निकालने या फ़ैक्टरी बन्द करने में कोई भी सरकारी या क़ानूनी दख़ल बिल्कुल न हो।

पूँजीपतियों की लगातार कम होती मुनाफ़े की दर और ऊपर से आर्थिक संकट तथा मज़दूर वर्ग में बढ़ रहे बग़ावती सुर से निपटने के लिए पूँजीपतियों के पास आख़िरी हथियार फासीवाद होता है। भारत के पूँजीपति वर्ग के भी अपने इस हथियार को आज़माने के दिन आ गये हैं। फासीवादी सत्ता में आते तो मोटे तौर पर मध्यवर्ग (तथा कुछ हद तक मज़दूर वर्ग भी) के वोट के बूते पर हैं, लेकिन सत्ता में आते ही वह अपने मालिक बड़े पूँजीपतियों की सेवा में सरेआम जुट जाते हैं। राजस्थान सरकार के ताज़ा संशोधन इसी का हिस्सा हैं। मगर फासीवाद के सत्ता में आने के बाद बात श्रम क़ानूनों को कमजोर करने तक ही नहीं रुकेगी, क्योंकि फासीवाद बड़ी पूँजी के रास्ते से हर तरह की रुकावट दूर करने पर आमादा होता है और यह सब वह "राष्ट्रीय हितों" के पर्दे के पीछे करता है। फासीवादी राजनीति पूँजीपतियों के लिए काम करने, उनका मुनाफ़ा बढ़ाने को देश के लिए काम करना, देश को "महान" बनाने के लिए काम करना बनाकर पेश करती है जिसके लिए सभी को (ज़ाहिर है पूँजीपति इसमें शामिल नहीं होते) बिना कोई सवाल-जवाब किये, बिना कोई हक़-अधिकार माँगे काम करना पड़ेगा। जो भी कोई इससे इंकार करेगा, वह देश का दुश्मन घोषित किया जायेगा और फिर "देश के दुश्मनों" को ख़त्म करने के बहाने मज़दूर वर्ग पर खुले हमले किये जायेंगे, मज़दूरों के नेताओं को देशद्रोही बताकर पकड़ा या मारा जायेगा और मज़दूर संगठनों को देशहित के विरोधी बताकर प्रतिबन्धित किया जायेगा। इस तरह मज़दूर वर्ग की लड़ाई अब पहले से ज़्यादा बड़ी तथा सख़्त होने वाली है। इसलिए मज़दूर वर्ग को अपने विशाल से विशाल हिस्से को तो एकताबद्ध करना ही होगा, साथ ही समाज के दूसरे मेहनतकश लोगों के बड़े से बड़े हिस्से को अपने पक्ष में जीतने के लिए कोशिशें करनी होंगी, फासीवादियों के अन्धराष्ट्रवादी प्रचार का पर्दाफ़ाश करना होगा। पूँजीपतियों तथा सरकारी गुण्डा-गिरोहों का मुकाबला करने के लिए मज़दूर वर्ग को बहुत जल्दी ही अपनी ताक़त जुटानी होगी और व्यापकतम एकता क़ायम करते हुए अपने अधिकारों को बचाने की लड़ाई में उतरना होगा, लेकिन अब उन्हें यह भी याद रखना होगा कि अब उनका सामना पूँजीपतियों के पाले हुए गुण्डों तथा सरकारी वर्दीधारी गुण्डों के साथ-साथ फासीवादी गुण्डा-गिरोहों तथा फासीवादी प्रचार से भी होगा।

- अमृतपाल

भगाना काण्ड : हरियाणा के दलित उत्पीड़न के इतिहास की अगली कड़ी

रोज़-रोज़ प्रचारित किया जाने वाला हरियाणा के मुख्यमन्त्री का 'नम्बर वन हरियाणा' का दावा कई मायनों में सच भी है। चाहे मज़दूरों के विभिन्न मामलों को कुचलना, दबाना हो, चाहे राज्य में महिलाओं के साथ आये दिन होने वाली बलात्कार जैसी घटनाओं का मामला हो या फिर दलित उत्पीड़न का मामला हो, इन सभी में हरियाणा सरकार अपने नम्बर वन के दावे पर खरी उतरती है। उत्पीड़न के सभी मामलों में सरकारी अमला जिस काहिली और अकर्मण्यता का परिचय देता है, वह भी अद्वितीय है। हरियाणा के हिसार ज़िले के भगाना गाँव के लगभग सवा सौ दलित परिवार वर्ष 2012 से दबंग जाति के समाज के ठेकेदारों के सामूहिक बहिष्कार के बाद निष्कासन झेल रहे हैं और ज़िला सचिवालय पर डेरा डाले हुए हैं। यह विवाद मुख्य रूप से शामलात भूमि पर दलितों द्वारा अपना हक़ जताने के बाद शुरू हुआ था। ग्राम पंचायत से लेकर पुलिस प्रशासन और राज्य सरकार तक का रवैया पूरी तरह से दलित विरोधी था, और इन पीड़ितों को अब तक न्याय नहीं मिला है। गत 23 मार्च को इसी भगाना गाँव की दूसरी दलित जाति की चार लड़कियों (जिनमें नाबालिग भी हैं) के साथ गाँव के ही दबंग जाति के लड़कों द्वारा अपहरण और बलात्कार की घटना हुई। इस कारगुज़ारी के बाद सरपंच से लेकर पूरे सरकारी तन्त्र ने अपनी दलित विरोधी मानसिकता को समाज के सामने बेपर्द कर दिया। इस घटना के बाद करीब 80 दलित परिवार अपने घर-बार छोड़कर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर हैं। फ़िलहाल ये देश की राजधानी के जन्तर-मन्तर पर हैं किन्तु सरकार का रवैया एकदम उदासीन है। हरियाणा में दलित उत्पीड़न की यह पहली घटना नहीं है, बल्कि ऐसी घटनाओं की श्रृंखला में अगली कड़ी भर है। इससे पहले मिर्चपुर, गोहाना, दूलीना जैसी दलित विरोधी घटनाएँ घटती रही हैं। और ये तो ऐसे वाकये हैं जो अपनी भयंकरता के कारण सामने आ पाये हैं, वैसे आयेदिन ही दलितों को उत्पीड़न झेलना पड़ता है। पुलिस, प्रशासन से लेकर न्याय व्यवस्था तक में बैठे लोग अपने अन्दर पैठे जातिगत पूर्वाग्रहों के कारण आमतौर पर ग़रीब दलित आबादी के विरोध मे ही खड़े होते हैं।

हमारे समाज में अब तक पड़ी मध्ययुगीन मूल्य-मान्यताएँ हरियाणवी समाज में बिल्कुल नंगे रूप मे देखी जा सकती हैं। चाहे वह दलित उत्पीड़न का मुद्दा हो या फिर अपनी शान के लिए अपनी मर्जी से अपना जीवन साथी चुनने वाले युवाओं की हत्या का मुद्दा हो या फिर औरत को पैर की जूती समझने की बात हो - हरियाणा में यह सब आसानी से देखा जा सकता है। खाप पंचायतें नामक मध्ययुगीन संस्थाएँ भी इन सड़ी मान्यताओं को ज़िन्दा रखने में अपनी भूमिका बख़ूबी निभाती हैं। विभिन्न चुनावी पार्टियाँ अपने वोट बैंक खिसकने के डर से आमतौर पर खापों से सीधे बैर नहीं लेती। कृषि में पूँजीवादी विकास और समाज की आम गति के कारण भी छुआछूत, अस्पृश्यता और महिलाओं को घरों में क़ैद करके रखने की मानसिकता में तो कमी आयी है, किन्तु लोगों की निम्न चेतना का फ़ायदा समाज के ठेकेदार आसानी से उठा लेते हैं। किसानों के विभेदीकरण के बाद सवर्ण और मध्य जातियों की बड़ी आबादी आज अपनी जगह-ज़मीन से या तो हाथ ही धो चूकी है या फिर इसकी खेती की जोत का आकार ही इतना छोटा हो चुका है कि उसे मेहनत-मज़दूरी करने के स्तर तक आना पड़ा है। किन्तु वर्गीय चेतना के न होने के कारण यह आबादी खाप पंचायतों मे बैठे धनी किसानों और चुनावी दलों की आसान शिकार हो जाती है। इसके साथ ही दलित आबादी का बेहद मामूली सा हिस्सा आरक्षण आदि के दम पर सामाज में ऊपर के पायदानों पर पहुँच चुका है, जिसका जीवन ऐशो-आराम में है और इसने ख़ुद को आम दलित आबादी (जिसका बड़ा हिस्सा आज भी मज़दूर के तौर पर ही खट रहा है) से ख़ुद को पूरी तरह से काट लिया है। तमाम चुनावी दलों में और दलितवादी सगठनों मे ऐसे स्वनामधन्य दलित मसीहा आसानी से दिख जायेंगे, जिन्हें वास्तव मे व्यापक दलित मज़दूर आबादी के लिए आरक्षण जैसे शिगूफ़े उछालकर और वर्ग चेतना को कुन्द करके सिर्फ़ अपनी गोटी लाल करनी होती है। आज हरियाणा ही नहीं बल्कि पूरे देश की मेहनतकश आबादी को यह समझ लेना होगा कि वह चाहे जिस भी जाति या धर्म की है, उसके हित एक जैसे हैं। तमाम जातिगत बँटवारे शासक जमात को तो फ़ायदा पहुँचा रहे हैं, जबकि हमारे वर्गीय भाईचारे को तोड़ रहे हैं। जातीय भेदभाव से ऊपर उठकर व वर्गीय आधार पर एकजुट होकर ही हम खाप पंचायतों जैसी मध्ययुगीन ताक़तों के सड़े मंसूबों को नाकाम कर सकते हैं। आज हमारा साझा हित आपस में बँटने में नहीं बल्कि संगठित होकर मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ उठ खड़े होने में है।

इसी मुद्दे से दूसरा सवाल जुड़ा है स्त्री उत्पीड़न का। आज एक तरफ़ जहाँ स्त्री उत्पीड़न के दोषियों का सामाजिक बहिष्कार करना चाहिए व उन्हें सख़्त सजाएँ दिलाने के लिए एकजुट आवाज़ उठानी चाहिए, वहीं स्त्री उत्पीड़न की जड़ों तक भी जाया जाना चाहिए। इन घटनाओं का मूल कारण मौजूदा पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में है। पूँजीवाद ने स्त्री को एक माल यानी उपभोग की एक वस्तु में तब्दील कर दिया है जिसे कोई भी नोच-खसोट सकता है। मुनाफ़े पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था ने समाज में अपूर्व सांस्कृतिक-नैतिक पतनशीलता को जन्म दिया है और हर जगह इसी पतनशीलता का आलम है। समाज के पोर-पोर में

(पेज 9 पर जारी)

लुटेरे थैलीशाहों के लिए "अच्छे दिन" – मेहनतकशों और ग़रीबों के लिए "कड़े क़दम"!

(पेज 1 से आगे)

कुछ वर्गों के लोग मुझसे नाराज़ हो सकते हैं, लेकिन देशहित में ऐसा करना ज़रूरी है। कहने की ज़रूरत नहीं कि ये सारे कड़े क़दम इस देशके मज़दूरों-मेहनतकशों और आम ग़रीब लोगों के लिए ही होंगे। जब भी अर्थव्यवस्था के संकट की बात होती है, तब ग़रीबों से ही कुर्बानी करने और अपने खाली पेट को थोड़ा और कसकर बाँध लेने के लिए कहा जाता है। संकट के कारण कभी ऐसा नहीं होता कि अपनी अय्याशियों में करोड़ों रुपये फूँकने वाले अमीरों पर लगाम कसी जाये। उनकी फ़िज़ूलख़र्चियों पर रोक लगायी जाये, उनकी लाखों-करोड़ों की तनख़्वाहों में कटौती की जाये या उनकी बेतहाशा आमदनी पर टैक्स बढ़ाकर संकट का बोझ हल्का करने के लिए संसाधन जुटाये जायें। अरबों-खरबों के ख़र्च वाली नेताशाही और अफ़सरशाही की अश्लील शाहख़र्चियों पर कोई अंकुश लगाने की बात कभी नहीं होती। "कड़े क़दमों" का हमेशा ही मतलब होता है, आम मेहनतकश लोगों की थाली से बची-खुची रोटी भी छीन लेना, उनके बच्चों के मुँह से दूध की आख़िरी बूँद भी सुखा देना, उन्हें मजबूर कर देना कि जीने के लिए बैल की तरह दिनो-रात अपनी हड्डियाँ निचुड़वाते रहें।

इसके लिए मज़दूरों के जो भी थोड़े-बहुत अधिकार कागज़ पर बचे हैं, उन्हें भी हड़प लेने की तैयारी शुरू हो गयी है। राजस्थान में वसुन्धरा राजे की भाजपा सरकार ने मज़दूर अधिकारों पर हमला बोलकर रास्ता दिखा दिया है। 300 तक मज़दूरों वाले कारख़ानों के मालिक अब सरकार की अनुमति के बिना मज़दूरों को निकाल बाहर कर सकते हैं। 40 मज़दूरों वाले कारख़ानों को फैक्ट्री क़ानून से ही बाहर कर दिया गया है और यूनियन बनाना पहले से भी ज़्यादा मुश्किल बना दिया गया है। (इसकी विस्तृत रिपोर्ट पेज 7 पर पढ़ें।) श्रम क़ानूनों में सुधार के नाम पर जल्दी ही ऐसे क़दम देशभर में लागू किये जाने हैं। पूँजीपतियों और उनके भोंपू मीडिया ने इसका स्वागत करके अपनी इच्छा ज़ाहिर कर ही दी है।

जिस तरह अटलबिहारी वाजपेयी की 13 दिन वाली सरकार ने 1996 में सत्ता में आने के साथ ही देशव्यापी विरोध के बावजूद कुख्यात अमेरिकी कम्पनी एनरॉन की फ़ाइलें पास करायी थीं उसी तरह मोदी सरकार ने आने के साथ ही रिलायंस की गैस के दाम दोगुने करने को हरी झण्डी दे दी है। पाकिस्तान से बात करने पर पिछली सरकार को पानी पी-पीकर कोसने वाली भाजपा के नेता पाकिस्तान के प्रधानमंत्री नवाज़ शरीफ़ को मोदी के शपथग्रहण समारोह में बुलाकर लहालोट हो रहे थे। पहले सैनिक हेमराज का कटा सिर वापस माँगने वाले मोदी अब नवाज़ शरीफ़ से साड़ी और शॉल का आदान-प्रदान कर रहे थे। क्योंकि अब उनके आका पूँजीपतियों को पाकिस्तान के बाज़ार की ज़रूरत है। दोनों तरफ़ के पूँजीपति एक-दूसरे के साथ पूँजीनिवेश और व्यापार बढ़ाने के मौक़े तलाश रहे हैं। कुछ रिपोर्टों के अनुसार मोदी के प्रिय उद्योगपति घराने अडानी ने गुजरात में पाकिस्तान सीमा के निकट 10,000 मेगावाट का जो बिजलीघर लगाया है उसकी ज़्यादा बिजली वह पाकिस्तान को सप्लाई करना चाहता है, इसलिए भी नवाज़ शरीफ़ का इतना स्वागत किया गया है। अभी दोनों मुल्कों के शासक वर्ग की ज़रूरत है कि शान्ति के माहौल में उद्योग-व्यापार बढ़ाया जाये। लेकिन जैसे ही दोनों तरफ महँगाई, बेरोज़गारी, दमन-उत्पीड़न से बदहाल जनता सड़कों पर उतरने लगेगी वैसे ही एक बार फिर अन्धराष्ट्रवादी नारे देकर लोगों की भावनाओं को भड़काने का खेल शुरू कर दिया जायेगा।

मोदी सरकार के नये एजेण्डे में श्रम क़ानूनों में सुधार के अलावा मनरेगा में कटौती करना, रेल का माल ढुलाई भाड़ा और यात्री किराये में बढ़ोत्तरी, पूँजीपतियों के लिए ज़मीनें हड़पना आसान बनाने के वास्ते भूमि अधिग्रहण क़ानून को बदलना, जनता को मिलने वाली सब्सिडी में कटौती, खाद के दामों में बढ़ोत्तरी, खाद्य सुरक्षा विधेयक का दायरा कम करना, एलपीजी और डीज़ल के दामों में मासिक वृद्धि की प्रणाली लागू करना जैसी चीज़ें सबसे ऊपर हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि इनकी सबसे ज़्यादा मार आम ग़रीब-मेहनतकश जनता पर पड़ेगी। इस एजेण्डा में मज़दूरों के लिए न्यूनतम मज़दूरी और बुनियादी हक़ों की गारण्टी करना, उनके शोषण-उत्पीड़न को ख़त्म करना, मालिकान द्वारा जब चाहे काम पर रखने जब चाहे निकाल बाहर करने की मनमानी को ख़त्म करना जैसी चीज़ें निश्चित तौर पर नहीं हैं। इन बातों से तो देश का विकास बाधित होता है। इसीलिए, गुजरात में मोदी सरकार ने राज्य से श्रम विभाग को ही ग़ायब कर दिया था। अब इतने के बाद यह बताने की ज़रूरत नहीं होनी चाहिए कि मोदी की नज़र में देश का मतलब कौन है? गुजरात में सिर्फ तीन कम्पनियों टाटा, मारुति और फोर्ड को 80,000 करोड़ की सब्सिडी देने वाले और अडानी ग्रुप को हज़ारों एकड़ ज़मीन एक रुपये एकड़ की दर से देने वाले मोदी की सरकार अब कह रही है कि ग़रीबों को मिलने वाली सब्सिडी से अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ता है इसलिए उन्हें ख़त्म करना ज़रूरी है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इन सबकी क़ीमत देश की आम मेहनतकश आबादी की हड्डियाँ निचोड़कर ही वसूली जायेगी। चुनावों में लगभग 40,000 करोड़ रुपये का जो भारी खर्च हुआ है, जिसमें करीब 10,000 करोड़ रुपये का ख़र्च अकेले मोदी के प्रचार पर बताया जा रहा है, उसकी भरपाई भी तो आम जनता को ही करनी है।

दरअसल नरेन्द्र मोदी का सत्ता में आना पूरी दुनिया में चल रहे सिलसिले की ही एक कड़ी है। पूँजीवादी व्यवस्था का संकट जैसे-जैसे गम्भीर होता जा रहा है, वैसे-वैसे दुनियाभर में फासीवादी शक्तियों में नयी जान फूँकी जा रही है। मिस्र, ग्रीस, स्पेन, इटली, फ्रांस, उक्रेन, जर्मनी, नार्वे जैसे यूरोप के कई देशों में फासिस्ट किस्म की धुर दक्षिणपंथी पार्टियों की ताक़त बढ़ रही है और कई देशों में नव-नाज़ी ग्रुपों का उत्पात तेज़ हो रहा है। आने वाले समय में मोदी की आर्थिक नीतियों का बुलडोज़र जब चलेगा तो अवाम में बढ़ने वाले असन्तोष को भटकाने के लिए यहाँ भी साम्प्रदायिक और जातिगत आधार पर मेहनतकश जनता को बाँटकर उसकी वर्गीय एकजुटता को ज़्यादा से ज़्यादा तोड़ने की कोशिशें की जायेंगी। देश के भीतर के असली दुश्मनों से ध्यान भटकाने के लिए उग्र अन्धराष्ट्रवादी नारे दिये जायेंगे और सीमाओं पर तनाव पैदा किया जायेगा। संघ परिवार के अनेक संगठन लम्बे समय से जैसा ज़हरीला प्रचार करते आ रहे हैं उसके द्वारा पैदा किये माहौल में इनके अनगिनत संगठनों के चरमपंथी तत्वों के उत्पात के कारण दंगे-फसाद की आशंका कभी भी बनी रहेगी। फासिस्ट स्वभाव से कायर होते हैं लेकिन जब सत्ता की ताक़त इनके साथ होती है तब ये कोई भी दुस्साहस करने से नहीं चूकते। वैसे भी, पूँजीपति वर्ग फासीवाद को ज़ंजीर से बँधे कुत्ते की तरह इस्तेमाल करना चाहता है ताकि जब असन्तोष की आँच उस तक पहुँचने लगे तो ज़ंजीर को ढीला करके जनता को डराने और आतंकित करने में इसका इस्तेमाल किया जा सके। लेकिन कई बार कुत्ता उछलकूद करते-करते ज़ंजीर छुड़ाकर अपने मालिक की मर्ज़ी से ज़्यादा ही उत्पात मचा डालता है। इसलिए मेहनतकशों, नौजवानों और सजग-निडर नागरिकों को चौकस रहना होगा। उन्हें खुद साम्प्रदायिक उन्माद में बहने से बचना होगा और उन्माद पैदा करने की किसी भी कोशिश को नाकाम करने के लिए सक्रिय हस्तक्षेप करने का साहस जुटाना होगा।

इतिहास में हमेशा ही फासीवाद विरोधी निर्णायक संघर्ष सड़कों पर हुआ है और मज़दूर वर्ग को क्रान्तिकारी ढंग से संगठित किये बिना, संसद में और चुनावों के ज़रिए फासीवाद को कभी शिकस्त नहीं दी जा सकी है। फासीवाद विरोधी संघर्ष को पूँजीवाद विरोधी संघर्ष से काटकर नहीं देखा जा सकता। फासीवाद विरोधी संघर्ष एक लम्बा संघर्ष है और उसी दृष्टि से इसकी तैयारी होनी चाहिए। अब हमारे सामने एक फौरी चुनौती आ खड़ी हुई है। हमें इसके लिए भी तैयार रहना होगा।

फासीवाद हर समस्या के तुरत-फुरत समाधान के लोकलुभावन नारों के साथ तमाम मध्यवर्गीय जमातों, छोटे कारोबारियों, सफ़ेदपोश कर्मचारियों, छोटे उद्यमियों और मालिक किसानों को लुभाता है। उत्पादन प्रक्रिया से बाहर कर दी गयी मज़दूर आबादी का एक बड़ा हिस्सा भी फासीवाद के झण्डे तले गोलबन्द हो जाता है जिसके पास वर्ग चेतना नहीं होती और जिनके जीवन की परिस्थितियों ने उनका लम्पटीकरण कर दिया होता है। निम्न मध्यवर्ग के बेरोज़गार नौजवानों और पूँजी की मार झेल रहे मज़दूरों का एक हिस्सा भी अन्धाधुन्ध प्रचार के कारण मोदी जैसे नेताओं द्वारा दिखाये सपनों के असर में आ जाता है। जब कोई क्रान्तिकारी सर्वहारा नेतृत्व उसकी लोकरंजकता का पर्दाफाश करके सही विकल्प प्रस्तुत करने के लिए तैयार नहीं होता तो फासीवादियों का काम और आसान हो जाता है। आरएसएस जैसे संगठनों द्वारा लम्बे समय से किये गये प्रचार से उनको मदद मिलती है। लेकिन अगर क्रान्तिकारी शक्तियाँ अपनी ताक़तभर इनके झूठे प्रचार का मुकाबला करती हैं तो जल्दी ही इनकी खुद की हरकतों से इनको नंगा करने के मौके सामने आने लगेंगे।

संशोधनवादी, संसदमार्गी नकली कम्युनिस्ट और सामाजिक जनवादी, जिन्होंने पिछले कई दशकों के दौरान मात्र आर्थिक संघर्षों और संसदीय विभ्रमों में उलझाकर मज़दूर वर्ग की वर्गचेतना को कुण्ठित करने का काम किया, आज फासीवादियों के सत्ता में आ जाने से सकपकाये हुए हैं। ये संशोधनवादी फासीवाद-विरोधी संघर्ष को मात्र चुनावी हार-जीत के रूप में ही प्रस्तुत करते रहे, या फिर सड़कों पर मात्र कुछ प्रतीकात्मक विरोध-प्रदर्शनों तक सीमित रहे। दरअसल ये संशोधनवादी आज फासीवाद का जुझारू और कारगर विरोध कर ही नहीं सकते। आज पूँजीवादी ढाँचे में किसी कल्याणकारी राज्य के विकल्प की सम्भावनाएँ बहुत कम हो गयी हैं, इसलिए पूँजीवाद के लिए भी ये संशोधनवादी काफी हद तक अप्रासंगिक हो गये हैं। ये बस मज़दूर वर्ग को अर्थवाद और संसदवाद के दायरे में कैद रखकर उसकी वर्गचेतना को कुण्ठित करते रहेंगे। जब फासीवादी आतंक चरम पर होगा तो ये संशोधनवादी चुप्पी साधकर बैठ जायेंगे। ना इनके कलेजे में इतना दम है और ना ही इनकी ये औक़ात रह गयी है कि ये फासीवादी गिरोहों और लम्पटों के हुजूमों से आमने-सामने की लड़ाई लड़ने के लिए लोगों को सड़कों पर उतार सकें। न पहले कभी इन्होंने ऐसा किया है और अब कर सकेंगे।

आने वाले समय में क्रान्तिकारी शक्तियों के प्रचार एवं संगठन के कामों का बुर्जुआ जनवादी स्पेस और कम हो जायेगा, यह तय है। लेकिन दूसरी तरफ, मोदी सरकार की नीतियों के अमल तथा हर प्रतिरोध को कुचलने की कोशिशों के चलते पूँजीवादी ढाँचे के सभी अन्तरविरोध उग्र होते चले जायेंगे। लोगों के भ्रम और झूठी उम्मीदें टूटेंगे। मज़दूर वर्ग और समूची मेहनतकश जनता रीढ़विहीन गुलामों की तरह सबकुछ झेलती नहीं रहेगी। वह सड़कों पर उतरेगी। व्यापक मज़दूर उभारों की परिस्थितियाँ तैयार होंगी। यदि इन्हें नेतृत्व देने वाली क्रान्तिकारी शक्तियाँ तैयार रहेंगी और साहस के साथ ऐसे उभारों में शामिल होकर उनकी अगुवाई अपने हाथ में लेंगी तो क्रान्तिकारी संकट की उन सम्भावित परिस्थितियों में संघर्ष को व्यापक बनाने और सही दिशा देने का काम किया जा सकेगा। अपने देश में और और पूरी दुनिया में बुर्जुआ जनवाद के कम होते जाने और नव फासीवादी ताक़तों का उभार दूरगामी तौर पर नयी क्रान्तिकारी सम्भावनाओं के विस्फोट की दिशा में भी संकेत कर रहा है।

निश्चित तौर पर, आने वाला समय में हमें ज़मीनी स्तर पर ग़रीबों और मज़दूरों के बीच अपना आधार मज़बूत बनाना होगा। बिखरी हुई मज़दूर आबादी को जुझारू यूनियनों में संगठित करने के अतिरिक्त उनके विभिन्न प्रकार के जनसंगठन, मंच, जुझारू स्वयंसेवक दस्ते, चौकसी दस्ते आदि तैयार करने होंगे। मेहनतकश जनता और क्रान्तिकारी शक्तियों को राज्यसत्ता के दमन का ही नहीं, सड़कों पर फासीवादी गुण्डा गिरोहों का भी सामना करने के लिए तैयार रहना होगा। लेकिन इतिहास का यह भी सबक है कि मज़दूर वर्ग ने हमेशा ही फासीवाद को धूल चटायी है।

सारे कड़े क़दम देश के मज़दूरों-मेहनतकशों और आम ग़रीब लोगों के लिए ही होंगे। जब भी अर्थव्यवस्था के संकट की बात होती है, तब ग़रीबों से ही क़ुर्बानी करने और अपने खाली पेट को थोड़ा और कसकर बाँध लेने के लिए कहा जाता है। संकट के कारण कभी ऐसा नहीं होता कि अपनी अय्याशियों में करोड़ों रुपये फूँकने वाले अमीरों पर लगाम कसी जाये। उनकी फ़िज़ूलख़र्चियों पर रोक लगायी जाये, उनकी लाखों-करोड़ों की तनख़्वाहों में कटौती की जाये या उनकी बेतहाशा आमदनी पर टैक्स बढ़ाकर संकट का बोझ हल्का करने के लिए संसाधन जुटाये जायें।

स्त्री-विरोधी मानसिकता के विरुद्ध व्यापक जनता की लामबन्दी करके संघर्ष छेड़ना होगा!

(पेज 1 से आगे)

निरंकुश और हर प्रकार के जनवादी मूल्यों से रिक्त हैं और फासिज़्म के सामाजिक आधार बन चुके हैं। यह जो नया तबका पैदा हुआ है, यह वही तबका है जो राजनीतिक धरातल पर फासीवाद का सामाजिक आधार तैयार करता है। इसी तबके में स्त्री उत्पीड़न और पुरुष स्वामित्ववाद की सबसे बर्बर घटनाएँ देखने को मिलती हैं। अन्तरजातीय प्रेम व विवाह करने पर बर्बर सज़ाओं की घटनाएँ भी अनजाम दी जा रही हैं। और अपने वोट बैंक को बनाये रखने के लिए राष्ट्रीय बुर्जुआ पार्टियों के नेता भी इन घटनाओं के बाद तुष्टीकरण करते रहते हैं। नवउदारवाद का यह दौर बुर्जुआ वर्ग के सभी हिस्सों के बीच आम सहमति की नीतियों का दौर है। अपने इन सामाजिक अवलम्बों के ख़िलाफ़ पूँजीपति वर्ग क़तई नहीं जायेगा। पूँजीवादी वोट बैंक के खेल के लिए जातिगत बँटवारे को बनाये रखना ज़रूरी है। और सामाजिक ताने-बाने में जनवादी मूल्यों के अभाव के कारण इसे मज़बूती भी मिलती है।

अति मुनाफ़ा निचोड़ने की हवस में पूँजीपति वर्ग एक तरफ़ तो आर्थिक धरातल पर मेहनतकशों की हड्डियों का चूरा बनाकर बाज़ार में बेचने को तैयार हैं, वहीं राजनीतिक धरातल पर राज्यसत्ता द्वारा निरन्तर निरंकुश दमनकारी रवैया अपनाया जा रहा है तथा सांस्कृतिक-सामाजिक धरातल पर कदाचार, दुराचार, व्यभिचार के वीभत्सतम-बर्बरतम रूप सामने आ रहे हैं। बदायूँ, मुज़फ़्फ़रनगर, भगाणा से लेकर देश के अलग-अलग कोनों में घट रही घटनाओं को इसी परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।

पूँजीवादी रुग्ण संस्कृति परजीवी अमीरों और गाँवों के कुलकों-फ़ार्मरों के बेटों का ही नहीं, बल्कि आम मध्यवर्गीय युवाओं और मज़दूरों की नसों में भी घुल रहा है। भारतीय गाँव तथा शहरों तक के समाज में स्त्री-पुरुष पार्थक्य और मध्ययुगीन ग़ैर-जनवादी स्त्री विरोधी मूल्यों-मान्यताओं का जो प्रभाव है, उससे न तो शहरी मध्यवर्ग मुक्त है, न मज़दूर वर्ग। ऐसे में भारत जैसे पिछड़े पूँजीवादी देश में नवउदारवाद के इस दौर की "खुलेपन" की नग्न-फूहड़ संस्कृति यहाँ यौन अपराधों को खुलकर बढ़ावा दे रही है। यह समस्या केवल पिछड़े समाजों की नहीं है, पश्चिम का समाज भी इससे अछूता नहीं है। बर्बर यौन अपराध और रुग्ण यौनाचार आज के पूँजीवाद की सार्वभौमिक संस्कृति है। नवउदारवाद के इस दौर में पूँजी की बढ़ती बर्बरता उग्र साम्प्रदायिक फासीवाद के साथ-साथ बर्बर जातिगत उत्पीड़न और स्त्री उत्पीड़न के रूप में अभिव्यक्त हो रहे हैं। धार्मिक कट्टरपन्थी फासीवाद, जातिवाद और पुरुष स्वामित्ववाद - इन तीनों के तार सामाजिक ताने-बाने में एक-दूसरे से उलझे व जुड़े हुए हैं। तीनों ही एक-दूसरे को बढ़ावा देते हैं। धर्म, जाति और औरत की गुलामी – इन तीनों को अलग नहीं किया जा सकता। लगातार देश के कोने-कोने में घट रही ऐसी घटनाएँ हमारे ज़मीर को ललकार रही हैं और संघर्ष के लिए प्रेरित कर रही हैं।

हमें इस मुगालते में भी रहने की ज़रूरत नहीं है कि यौन हिंसा की घटनाओं को पुलिस व्यवस्था व क़ानून व्यवस्था को चाक-चौबन्द करके रोका जा सकता है। कौन नहीं जानता है कि थाने में स्त्रियों के साथ बलात्कार व दुर्व्यव्हार एक आम बात है। अदालतों में जज प्रायः अपने स्त्री-विरोधी पूर्वाग्रहों का ज़हर उगलते रहते हैं। अफ़सरों के रुग्ण यौन विलासिताओं और सेक्स पर्यटन की ख़बरों से कौन अपरिचित होगा। नेताओं द्वारा बलात्कारों और यौन अपराधों की घटनाओं का सौवाँ हिस्सा ही सामने आ पाता है। हालत यह है कि आज एक लाख से अधिक बलात्कार के मामले लम्बित हैं। बलात्कार के नब्बे प्रतिशत आरोपी अदालतों से बेदाग बरी होते रहे हैं।

और सबसे मूल बात यह है कि राज्यसत्ता हर जगह बलात्कार का हथियार के रूप में इस्तेमाल करती रही है। आज़ादी के बाद से लेकर अब तक कश्मीर और उत्तर-पूर्व में सेना और अर्द्धसैनिक बलों ने स्त्रियों पर बर्बर यौन अत्याचार और बलात्कार के बाद हिंसा जैसे जघन्य अपराध जितने बड़े पैमाने पर किये हैं, वे मानवता को शर्मसार करने वाले हैं। 'आर्म्ड फ़ोर्सेस स्पेशल पावर्स एक्ट' वस्तुतः फ़ासिस्ट सैनिक शासन का ही एक रूप है, जो मुठभेड़, नरसंहार, बलात्कार और यौन हिंसा का सैन्य बलों को लाइसेंस प्रदान करता है। कश्मीर और उत्तर-पूर्व के कई गाँवों को आज 'बलात्कार वाले गाँव' के रूप में ही जाना जाता है। बच्चियों और स्त्रियों के यौनांगों में शीशे की बोतल या प्लास्टिक के टुकड़े घुसेड़ने वाले जिन मनोरोगी बलात्कारियों की ख़बरें जिन दिनों मीडिया में आयी थीं, उनसे दन्तेवाड़ा के एस.पी. अमित गर्ग को भिन्न कैसे माना जा सकता है जिसने माओवादी होने के आरोप में गिरफ़्तार शिक्षिका सोनी सोरी के यौनांग में पत्थर भर दिये थे। इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि इस बर्बर मनोरोगी को राज्यसत्ता ने बहादुरी और निर्भीकतापूर्ण कर्तव्यपालन के लिए राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया। नरेन्द्र मोदी को हिन्दुत्व का नायक बनाने वाले गुजरात नरसंहार में सामूहिक बलात्कार और हत्या की जो बर्बर घटनाएँ अंजाम दी गयीं, उन्हें क्या कभी भुलाया जा सकेगा। सच्चाई यह है कि इतिहास की हर राज्यसत्ता से अधिक बुर्जुआ राज्यसत्ता स्त्री विरोधी हिंसा और यौन उत्पीड़न को दमन के हथकण्डे के रूप में इस्तेमाल करती रही हैं। राज्यसत्ता का चरित्र शासक वर्ग के हित और संस्कृति से भिन्न नहीं हो सकता। उत्पादन सम्बन्ध और सामाजिक ढाँचे से इतर व्यवहार की उससे अपेक्षा नहीं की जा सकती।

मूल बात यह है कि आज का पूँजीवाद ऐसे अपराधों और ऐसे अपराधियों को जन्म दे रहा है। यह वही पूँजीवाद है जो युद्ध, भुखमरी, कुपोषण, नरसंहार, बीमारियों, दवाओं और बुनियादी ज़रूरतों के अभाव और पर्यावरण विनाश के रूप में मानवता पर लगातार क़हर बरपा कर रहा है। पूँजीवाद ही इतिहास का असली अपराधी है। पूँजीवाद आज सांस्कृतिक-आत्मिक धरातल पर मनोरोग और अपराध की संस्कृति और अपराधी ही पैदा कर सकता है।

लेकिन मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की लड़ाई एक लम्बी लड़ाई है तब तक बदायूँ जैसी घटनाएँ व स्त्रियों के विरुद्ध बढ़ती दरिन्दगी को हम बस यूँ ही चिन्ता और गुस्सा जाहिर करते हुए देखते-भुगतते नहीं रह सकते। इनसे निपटने के लिए मज़दूरों, नौजवानों, नागरिकों के अलावा स्त्रियों की संगठित शक्ति को आगे आना होगा।

पूँजीवाद नित नयी बर्बरताओं का कहर हम पर ढाता रहेगा और उसके चाकर अखिलेश-मुलायम सरकार से लेकर समस्त राज्यसत्ता उसे बढ़ावा देते रहेंगे। यही सच्चाई है और इसका संगठित प्रतिरोध ही बचाव का एकमात्र तात्कालिक रास्ता है।

बदायूँ जैसी घटना और उसकी निरन्तर पुनरावृत्ति केवल स्त्रियों, दलितों या जनवादी अधिकार का ही मसला नहीं है, बल्कि मुक्तिकामी जनों के संघर्ष का एक अहम मसला है। स्त्री विरोधी मानसिकता के विरुद्ध व्यापक जनता की लामबन्दी करके ही इससे लड़ा जा सकता है। हमें सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर ऐसे मुद्दों को लेकर पुरज़ोर तरीक़े से संघर्ष की रणनीति तैयार करनी होगी। और संघर्ष में जल्द से जल्द उतरना होगा।

कहाँ से पैदा होते हैं बलात्कारी, हत्यारे, लम्पट
अमानवीय पशुवत जीव!
पूँजीवादी सभ्यता-संस्कृति की जारज औलादें हैं
ये जहरीले नाग।
ये स्त्री-विरोधी परम्पराओं-रूढ़ियों के
बिलों-बाँबियों में छिपे रहते हैं,
जीते हैं रुग्ण संस्कृति की नशीली खुराक पर,
लोभ-लाभ की संस्कृति और अन्धी प्रतिस्पर्धा
इनके जहर को मारक बनाती है,
आम लोगों की कायरता और तटस्थता
इनकी हिम्मत बढ़ाती है,
स्त्री-शरीर को उपभोक्ता वस्तु के रूप में परोसता
मनोरंजन उद्योग
इनका उन्माद बढ़ाता है।
बेशक, इन ज़हरीले नागों का फन कुचलना होगा,
पर इतना ही काफी नहीं होगा।
इन्हें क्षण-प्रतिक्षण जन्म देने वाली
मानवद्रोही सामाजिक व्यवस्था
और उसकी रुग्ण संस्कृति के विरुद्ध
एक लम्बी, फैसलाकुन लड़ाई लड़नी होगी,
प्रतिगामी परम्पराओं-रूढ़ियों के बिलों-बाँबियों को
नष्ट करना होगा
और शराफ़त की आड़ लेने वाले
कायर और तटस्थ लोगों की आँखों के सामने
खड़े करने होंगे कुछ जलते हुए प्रश्नचिन्ह!

भगाना काण्ड : हरियाणा के दलित उत्पीड़न के इतिहास की अगली कड़ी

(पेज 7 से आगे)

पैठी पितृसत्ता ने स्त्री उत्पीड़न की मानसिकता को और भी खाद-पानी देने का काम किया है। आमतौर पर मानसिक रूप से बीमार लोगों को ग़रीब घरों की महिलाएँ आसान शिकार के तौर पर नज़र आती हैं। ख़ासकर 90 के दशक में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियाँ लागू होने के बाद एक ऐसा नवधनाढ्य वर्ग अस्तित्व में आया है जो सिर्फ़ 'खाओ-पीओ और मौज करो' की पूँजीवादी संस्कृति में लिप्त है। इसे लगता है कि यह पैसे के दम पर कुछ भी ख़रीद सकता है। पुलिस और प्रशासन को तो यह अपनी जेब में ही रखता है। यही कारण है कि 1990 के बाद स्त्री उत्पीड़न की घटनाओं में गुणात्मक तेज़ी आयी है। यह मुनाफ़ाकेन्द्रित पूँजीवादी व्यवस्था सिर्फ़ सांस्कृतिक और नैतिक पतनशीलता को ही जन्म दे सकती है, जिसके कारण रुग्ण और बीमार मानसिकता के लोग पैदा होते हैं। इसके अलावा, इन घटनाओं के पीछे हमारे समाज के पोर-पोर में समायी पितृसत्तात्मक मानसिकता ज़िम्मेदार है। तमाम स्त्री विरोधी अपराधों को जड़ से ख़त्म करने के लिए हमें इस पूरे सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक ढाँचे को ही उखाड़कर ऐसे समाज निर्माण के कार्यभार की तरफ़ बढ़ना होगा, जिसकी बुनियाद मुनाफ़ा नहीं बल्कि मानवीय मूल्य और मानवीय सरोकार हों।

भगाना के दलितों का संघर्ष यह ख़बर लिखे जाने तक जारी है और प्रशासन की तरफ़ से अभी तक केवल आश्वासन ही मिल रहे हैं। नयी सरकार बनने के बाद तो जन्तर मन्तर पर प्रदर्शन को ही बन्द करने की कोशिश की गयी। किन्तु व्यापक विरोध के कारण प्रशासन अपने मंसूबों में नाकामयाब रहा। फ़िलहाल आगे की रणनीति पर बातचीत हो रही है कि इस संघर्ष के साथ व्यापक इंसाफ़पसन्द आबादी को कैसे जोड़ा जाये।

– अरविन्द

दुनियाभर में अमानवीय शोषण-उत्पीड़न के शिकार हैं प्रवासी कामगार

एक अच्छे जीवन की चाहत में मानवीय प्रवास, यानी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर रहना, सदियों से जारी है। आज के पूँजीवादी युग में यह लगातार बढ़ता जा रहा है। असमान आर्थिक विकास पूँजीवादी ढाँचे का अन्तर्निहित नियम है। पूँजीवाद में सबकुछ मुनाफ़े को ध्यान में रखकर होता है, इसलिए सभी क्षेत्रों का समानतापूर्ण विकास करने वाली समग्र योजनाएँ न बन सकती हैं और न लागू हो सकती हैं। पूँजी हमेशा वहाँ भागती है जहाँ सबसे जल्दी और आसानी से मुनाफ़ा पैदा किया जा सकता है। इसी कारण कुछ क्षेत्रों में तेज़ आर्थिक विकास होता है, जबकि दूसरे क्षेत्र अविकसित हालत में पड़े रहते हैं। ये अविकसित क्षेत्र विकसित क्षेत्रों के लिए मज़दूरों की 'सप्लाई' करने वाले इलाक़ों में बदल जाते हैं।

असमान आर्थिक विकास की बदौलत देशों के अन्दर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र और एक देश से दूसरे देश की तरफ़ (आमतौर पर अविकसित से विकसित की तरफ़) मज़दूरों का प्रवास जारी रहता है। स्थानीय मज़दूरों की संघर्ष की ताक़त अधिक होने के कारण विश्वभर के लुटेरे पूँजीपति स्थानीय की बजाय प्रवासी मज़दूरों को काम पर रखना पसन्द करते हैं। एक तो इन प्रवासी मज़दूरों से कम तनख़्वाह पर काम लिया जाता है, दूसरा स्थानीय और प्रवासी के झगड़े खड़े करके मज़दूरों की एकता की राह में अड़चनें पैदा की जाती हैं। इस तरह पूँजीपति वर्ग के लिए प्रवासी मज़दूर ज़्यादा अनुकूल होते हैं। आगे हम अलग-अलग देशों में प्रवासी मज़दूरों की स्थितियों पर नज़र डालेंगे :

सऊदी अरब

यहाँ की समस्त श्रम शक्ति का 60-67 फ़ीसदी हिस्सा प्रवासियों का है और निजी क्षेत्र में तो यह आँकड़ा 90-95 प्रतिशत है। सऊदी अरब में, बड़ी कम्पनियों की तरफ़ से जारी किये जाने वाले वीज़ा पर एक करोड़ से ज़्यादा प्रवासी मज़दूर काम करते हैं। इसके अलावा छोटी-छोटी कम्पनियों और अलग से वीज़ा लेने वाले और भी हैं। इन सभी मज़दूरों में से सबसे ज़्यादा लुटने वाला हिस्सा घरेलू मज़दूरों का है। घरेलू मज़दूर के तौर पर काम करने वाली ज़्यादातर औरतें इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स, श्रीलंका और बांगलादेश की हैं। ये औरतें अपने मालिकों के घरों में सालो-साल क़ैद रहती हैं क्योंकि सऊदी क़ानून के मुताबिक़, औरत के बाहर जाने के लिए साथ में एक मर्द का होना ज़रूरी है। इनका शारीरिक शोषण भी किया जाता है, लेकिन शरीयत के क़ानून के मुताबिक़ इसको साबित करने के लिए 4 औरतों या 2 पुरुषों की गवाही ज़रूरी है। कहने की ज़रूरत नहीं कि मुजरिम खुलेआम घूमते हैं।

दूसरी ओर हैं अमेरिका की शह पाये हुए शेख, जिनकी दौलत का कोई हिसाब नहीं। एक अनुमान के अनुसार देश की समस्त तेल आमदनी पर शाही घराने से सम्बन्धित सिर्फ़ 15,000 लोगों का क़ब्ज़ा है। आर्थिक संकट, अमीर-ग़रीब की बढ़ती खाई, बेरोज़गारी और पूरे अरब क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों के दौरान उठे जनान्दोलनों से सऊदी शासक वर्ग को और उसके साम्राज्यवादी आका डरे हैं, जिस कारण न चाहते हुए भी उन्हें कुछ सुधार करने पड़े हैं। अरब उभार के तुरन्त बाद शासक वर्ग ने 76 बिलियन डॉलर के सुधार पैकेज का ऐलान किया, जिसमें स्थानीय जनता को काम देना और प्रवासी मज़दूरों पर निर्भरता कम करना शामिल है। परमिट फ़ीस को बढ़ाया गया, लेकिन सभी कम्पनियाँ इस बढ़ी हुई फ़ीस को देने से मना कर रही हैं और मज़दूर इस हालत में नहीं हैं कि वह दे सकें। इससे प्रवासी मज़दूरों से रोज़गार छीने जाने का ख़तरा है। खुले वीज़ों पर रोक के कारण अनेकों मज़दूरों का रोज़गार छूटेगा। पिछले दिनों हज़ारों भारतीय मज़दूरों के सऊदी अरब से निकाले जाने के हालात बन गये थे और बहुतों को वापस भी आना पड़ा। नयी नीतियों से प्रवासी कामगारों की स्थिति और भी बदतर बनेगी। हालाँकि ये क़ानून कभी पूरी तरह लागू नहीं किये जा सकते, क्योंकि सभी कम्पनियों को अपने मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए सस्ती श्रम शक्ति की ज़रूरत है। इसीलिए ये कम्पनियाँ 50 प्रतिशत स्थानीय लोगों को काम देने के नियम का विरोध भी कर चुकी हैं, क्योंकि स्थानीय लोगों को न्यूनतम वेतन और अन्य भत्ते तो देने ही पड़ते हैं। इसका एक दूसरा पक्ष यह भी है कि स्थानीय मज़दूरों के साथ मिलने से मज़दूर वर्ग की आपसी एकता और मज़बूत होगी। अगर प्रवासी मज़दूरों को बाहर कर दिया गया, तो वहाँ की पूरी अर्थव्यवस्था ही बैठ जायेगी, जिसको दूर करने के लिए वीज़ों का व्यापार फिर चालू हो जायेगा। यह एक ऐसा चक्कर है जो शासक वर्ग के लिए और दिक्कतें ही पैदा करेगा।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान सऊदी अरब में भी स्थानीय आबादी और प्रवासी मज़दूरों के व्यापक विरोध प्रदर्शन होते रहे हैं जिनको सत्ता द्वारा बुरी तरह से दबाया गया है। लेकिन पश्चिमी मीडिया इन्हें कभी नहीं दिखाता।

कतर

फ़ुटबाल के 2022 विश्व कप की मेजबानी मिलने के बाद खाड़ी क्षेत्र का एक और देश कतर सुर्ख़ियों में है। कतर की तकरीबन 20 लाख आबादी का 90 प्रतिशत भाग प्रवासी मज़दूरों का है, जिनमें से ज़्यादा (तकरीबन 40 प्रतिशत) नेपाल से हैं। अनुमान है कि विश्व कप की तैयारी के लिए कतर तकरीबन 100 अरब डॉलर ख़र्च करेगा। लेकिन पानी की तरह पैसा बहाने वालों की मुट्ठियाँ मज़दूरों के नाम पर बन्द हो जाती हैं। 'गार्जियन' अख़बार के मुताबिक़ पिछले वर्ष प्रतिदिन औसतन एक नेपाली मज़दूर की मौत हुई है, जिन में से ज़्यादा युवक मज़दूर अचानक पड़ने वाले दिल के दौरे से मरे हैं। छानबीन के दौरान कुछ और बातें भी सामने आयी हैं - विश्व कप के लिए आधारभूत ढाँचे के निर्माण के काम में बँधुआ मज़दूरी का इस्तेमाल। कई नेपाली मज़दूरों का आरोप है कि उनकी तनख़्वाह महीनों तक रोककर रखी जाती है। आमतौर पर मालिक मज़दूरों के पासपोर्ट ज़ब्त कर लेते हैं और पहचान-पत्र जारी नहीं करते, जिससे उनका दर्जा ग़ैर-क़ानूनी प्रवासियों जैसा बन जाता है। एक-एक कमरे में 12-12 व्यक्ति सोते हैं। एक मज़दूर रामकुमार माहर के अनुसार - "हम 24 घण्टे ख़ाली पेट काम करते थे। 12 घण्टे काम और फिर बिना भोजन के सारी रात। जब मैंने शिकायत की तो प्रबन्धक ने मेरे ऊपर हमला किया और मुझे मज़दूर बस्ती से निकाल दिया और मेरी तनख़्वाह मार ली। मुझे रोटी के लिए दूसरे कामगारों के आगे हाथ फैलाने पड़े।"

दरअसल गैस से होती कमाई के चलते कतरवासियों का एक हिस्सा ठाठ से रह रहा है और इस आराम की ज़िन्दगी को सलामत रखने के लिए वे प्रवासी मज़दूरों पर निर्भर हैं। उनके इस ठाठ-बाट की हिफ़ाज़त के लिए अल-उबेद की हवाई छावनी (क्षेत्र में सबसे बड़ी) में 10,000 अमेरिकी सैनिक तैनात हैं। लेकिन जिस तरह हाल ही में प्रवासियों की इस लूट के ख़िलाफ़ जगह-जगह प्रदर्शन हुए हैं, अरब उभार के बाद लोगों की चेतना विकसित हुई है, उससे यह उम्मीद है कि यह चिंगारी कतर तक भी पहुँचेगी।

संयुक्त अरब अमीरात

1950 के दशक में हुई तेल की खोज से पहले तक संयुक्त अरब अमीरात ब्रिटेन के नियन्त्रण में था और इसकी आबादी सिर्फ़ एक लाख थी। इसकी अर्थव्यवस्था खजूर और समुद्री कमाई पर चलती थी। तेल की खोज के बाद विदेशी कम्पनियाँ यहाँ पहुँच गयीं और तेल से होने वाली कमाई का इस्तेमाल कर एक आधुनिक राज्य बनाने के लिए भारत और पाकिस्तान से बड़ी संख्या में सस्ती श्रमशक्ति को लाया गया, जिनकी आबादी जल्द ही स्थानीय लोगों से अधिक हो गयी। 2010 के आँकड़ों के अनुसार संयुक्त अरब अमीरात की आबादी का 70 प्रतिशत से ज़्यादा प्रवासी मज़दूरों का था (ज़्यादातर भारत, पाकिस्तान, बांगलादेश, श्रीलंका, फिलीपिन्स के) और निजी क्षेत्र में श्रम शक्ति का 90 प्रतिशत हिस्सा प्रवासी मज़दूर थे। ये मुख्य तौर पर निर्माण उद्योग, सेवा क्षेत्र और घरेलू मज़दूर के तौर पर काम कर रहे थे। ये मज़दूर बहुत ही कम तनख़्वाह पर काम करने के लिए मजबूर हैं (तकरीबन 400 डॉलर प्रतिमाह), न सिर्फ़ काम की स्थितियाँ ख़तरनाक हैं, बल्कि इनके रहने की बस्तियाँ भी नारकीय हैं। दर्जनों लोगों के लिए एक-एक शौचालय, पानी की कमी, छोटे-छोटे कमरों में कई-कई मज़दूर सोते हैं। इन बस्तियों का कोई जायज़ा लेना चाहे तो नहीं ले सकता, क्योंकि बाहर वालों के आने पर पाबन्दी है। मज़दूरों को भारी गर्मी में काम करना पड़ता है। इन भयानक स्थितियों में काम करने से हर वर्ष सैकड़ों मज़दूर दिल का दौरा पड़ने से मर जाते हैं। ज़्यादातर मज़दूर क़र्ज़ में दबे हैं, क्योंकि यहाँ आने के लिए उनसे एजेण्ट भारी क़ीमत वसूलते हैं। वीज़ा की फ़ीस, बीमा फ़ीस और हवाई टिकट आदि जो कम्पनी की ज़िम्मेदारी होती है, वह भी उन्हें भरना पड़ता है। असल तनख़्वाह इकरार की गयी तनख़्वाह से कहीं कम होती है, इसलिए मज़दूरों को कई वर्ष यह क़र्ज़ उतारने में ही लग जाते हैं। मज़दूर अपनी मर्जी से कोई दूसरा रोज़गार नहीं चुन सकते, जब तक पिछला मालिक इजाज़त नहीं देता या फिर वह देश छोड़कर दोबारा नये वीज़ा पर नहीं आते। उनके सभी ज़रूरी काग़ज़ात पहले मालिक के क़ब्ज़े में रहते हैं, इसलिए मालिक के बिना मज़दूर ग़ैर-क़ानूनी बन जाता है। जबकि मालिक इकरारनामे को अपनी इच्छा मुताबिक़ बदल सकते हैं। न्यूनतम वेतन तय नहीं होता, यूनियन बनाने पर प्रतिबन्ध है और हड़ताली मज़दूरों को वापस भेज देने का ख़तरा रहता है।

इन स्थितियों के ख़िलाफ़ मज़दूर सार्वजनिक प्रदर्शन और हड़तालें करते रहे हैं। अरब उभार की चिंगारी पहुँचने के बाद ये लहरें और तीखी हुई हैं लेकिन पूँजीवादी मीडिया की तरफ़ से इन घटनाओं को बड़ी होशियारी से लोगों से दूर रखा गया है।

ओमान

ओमान में काम कर रहे दस लाख प्रवासी मज़दूरों में से आधे भारतीय हैं। ज़्यादातर का सम्बन्ध केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक या महाराष्ट्र और पंजाब से है। ज़्यादातर लोग निर्माण उद्योग में लगे हुए हैं। दूसरे खाड़ी मुल्कों में प्रवासी मज़दूरों जैसी ही इनकी भी हालत है। बिना किसी क़ानूनी सुरक्षा के काम के लम्बे घण्टे और कम वेतन। केरल के मज़दूर मनी ने बताया, "मैं रोज़ाना 8-10 घण्टे काम करता हूँ। सफ़ाई के अलावा अपनी कम्पनी के और भी छोटे-बड़े काम करता हूँ। मैं महीने के 70 रियाल (182 डॉलर) कमा लेता हूँ। मैं अपनेआप को तब थोड़ा ख़ुशनसीब मानता हूँ जब उन लोगों को देखता हूँ जिनको 45-50 डिग्री तापमान में फ़ैक्टरियों में इतने ही घण्टे काम करना पड़ता है, वह भी सिर्फ़ 45-65 रियाल (116-170 डॉलर) के लिए।"

रूस

1991 में सोवियत संघ के टूटने के कारण पैदा हुई रिक्तता का लाभ स्थानीय राष्ट्रवादी, फासीवादी पार्टियों ने उठाया। अलग-अलग पूँजीवादी पार्टियाँ भी इनके ही पक्ष में झुकीं, और मौजूदा पुतिन सरकार का भी उन्हें समर्थन मिला। दिसम्बर 2012 में मास्को से प्रकाशित पत्रिका 'बोलशोई गोरोद' ने एक फासीवादी फ़ौजी गुट 'स्वेत्लाया रूस' के हमले के बारे में ख़बर छपी थी। यह गुट, पुलिस और संघीय प्रवासी सेवा की तरफ़ से प्रवासियों को पकड़ता है। 'स्वेत्लाया रूस' का नेता इगोर मान्गुशेव, नार्वे में 75 युवाओं का क़त्लेआम करने वाले नवनाज़ीवादी आन्दर्स ब्रेविक का भक्त है।

एक अनुमान के मुताबिक़ रूस में तकरीबन डेढ़ करोड़ प्रवासी मज़दूर हैं, जो कि अमेरिका के बाद सबसे अधिक हैं। रूस की अर्थव्यवस्था में ख़ासकर सन् 2000 के बाद की तेल-आधारित तेज़ी में इनका बड़ा योगदान है। इसलिए 2000 के बाद प्रवासियों की, ख़ासकर काकेशिया की तरफ़ के प्रवासियों की रूस में आमद में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई है। इनको बिना किसी बीमा या सुरक्षा के काम करना पड़ता है और हमेशा मालिक या पुलिस की मनमानी के चलते निर्वासन की आशंका में जीना पड़ता है। रहने की इमारतें गन्दी रहती हैं और सुरक्षा प्रबन्ध न होने के कारण अकसर हादसे होते रहते हैं। पिछले वर्ष अप्रैल में ताज़िकिस्तान के 17 प्रवासी मज़दूर इमारत में आग लगने के कारण भीतर ही झुलस गये थे। जिस तरह हमारे यहाँ मालिक रात को बाहर से ताला लगाकर मज़दूरों को काम करने के लिए छोड़ जाता है, वैसे ही उनका मालिक इमारत को बाहर से बन्द करके चला गया था। पिछले वर्ष सितम्बर में, येगोरेव्सकी क़स्बे में इमारत में आग लगने से 14 मज़दूर मारे गये थे। पुतिन की सरकार ने कई प्रवासी-विरोधी क़ानून भी पास किये हैं। कुछ दिन पहले ही मास्को में एक रूसी युवक के क़त्ल के बाद अन्धराष्ट्रवादियों ने काकेशिया से आये मज़दूरों पर गुस्सा निकाला और पूरे शहर में उत्पात मचाया। इस दौरान "रूस रूसियों के लिए" के नारे भी लगाये गये। 2010 में भी इसी तरह के दंगे हुए थे।

यूनान

आर्थिक संकट के बाद मज़दूरों पर जारी धक्केशाही का क्रूर प्रदर्शन प्रवासी मज़दूरों पर होते हमलों के रूप में हुआ है। इस समय यूनान में बेरोज़गारी 25 प्रतिशत के पार है और युवकों में यह दर 50 प्रतिशत से ऊपर है। किसी क्रान्तिकारी पार्टी की ग़ैर-मौजूदगी के चलते, बेरोज़गारी और बदहाली से तबाह आबादी के गुस्से को ग़लत दिशा में मोड़ने में गोल्डन डॉन जैसी फासीवादी पार्टियाँ कुछ हद तक कामयाब हुई हैं। सिर्फ़ गोल्डन डॉन ही प्रवासी मज़दूरों पर हमले नहीं करती है, बल्कि सरकार और मालिकों की तरफ़ से सरेआम प्रवासी मज़दूरों का दमन किया जाता है। अप्रैल में, दक्षिण यूनान में अपने वेतन के लिए जमा हुए बांगलादेशी मज़दूरों पर फ़ोरमैन ने गोली चला दी, जिसमें 30 से ज़्यादा मज़दूर ज़ख़्मी हुए। पिछले वर्ष अगस्त में एथेन्स में पुलिस ने "ऑपरेशन जिनिउस जियस" शुरू किया, जिसके तहत प्रवासियों की बड़े पैमाने पर धरपकड़ की गयी। 4200 से ज़्यादा मज़दूरों को दस्तावेज़ न होने के कारण नज़रबन्द किया जा चुका है और जल्द ही निर्वासित किया जा सकता है।

जर्मनी

यूरोप में फैले आर्थिक संकट का यूनान के बाद अगर सबसे ज़्यादा असर किसी देश में हुआ है तो वह हैं स्पेन और इटली। इन देशों की अर्थव्यवस्था चरमराने से इन देशों में प्रवासी मज़दूरों की आमद भी कम हो गयी है। रोमानिया, बुल्गारिया और अन्य दक्षिण-पूर्वी यूरोपीय देशों के मज़दूरों की 'मनपसन्द' जगह अब जर्मनी बन गयी है। 2014 में यूरोपीय यूनियन की श्रम-मण्डी पूरी तरह खुल जाने से रोमानिया और बुल्गारिया के मज़दूरों की जर्मनी में संख्या 1,00,000-1,80,000 पहुँच जाने की सम्भावना है। इसके अलावा वहाँ तुर्की और एशियाई देशों के कामगार भी बड़ी संख्या में मौजूद हैं।

क्रूर लूट जर्मनी में इनका स्वागत करने के लिए तैयार है। जुब्लिन नाम की कम्पनी, जिसके पास यूरोपीय केन्द्रीय बैंक की नयी इमारत बनाने का ठेका है, प्रवासी मज़दूरों से काम लेती है। यहाँ काम करने वाले मज़दूरों के रहने के कमरे जेल जैसे लगते हैं। उनके चारों ओर कँटीले तारों की बाड़ खड़ी करके इससे आम लोगों से काट दिया गया है। चाहे फ़्रैंकफ़र्ट के यूरोपा मकानों का निर्माण हो या फिर सारलैण्ड के बोस्तालसी

(पेज 13 पर जारी)

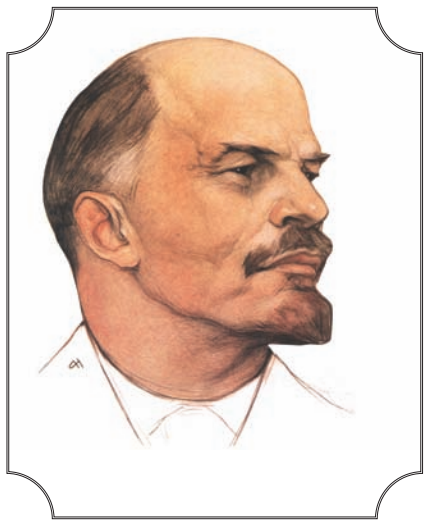

हड़तालों के बारे में – लेनिन

(पिछले कुछ वर्षों के दौरान देशभर में मज़दूर हड़तालों का सिलसिला तेज़ होता जा रहा है। जहाँ भी औद्योगिक इलाक़े हैं वहाँ से मज़दूरों की छोटी-बड़ी हड़तालों की ख़बरें आती रहती हैं। देश में एक सुसंगठित क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के न मौजूद होने के कारण अक्सर ये हड़तालें स्वत:स्फूर्त ढंग से, यानी बिना किसी योजना व संगठित तैयारी के होती हैं। दूसरी ओर, पूँजीपति वर्ग आज मज़दूरों के हर आन्दोलन को कुचलने के लिए पूरी तरह चाक-चौबन्द है और सरकार, पुलिस-प्रशासन, कोर्ट-कचहरी, बुर्जुआ मीडिया सब उसके पक्ष में हैं। इसलिए ज़रूरी है कि मज़दूर अपनी लड़ाई के इस हथियार का सही ढंग से इस्तेमाल करने के बारे में सीखें। इसी उद्देश्य से हम मज़दूर वर्ग के महान क्रान्तिकारी नेता और शिक्षक व्लादीमिर लेनिन का यह लेख फिर से प्रकाशित कर रहे हैं। यह तीन लेखों की शृंखला का पहला लेख है। अन्य दो लेख ख़ासकर रूस की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर लिखे गये थे। – सम्पादक)

इधर कुछ वर्षों से रूस में मज़दूरों की हड़तालें बारम्बार हो रही हैं। एक भी ऐसी औद्योगिक गुबेर्निया नहीं है, जहाँ कई हड़तालें न हुई हों। और बड़े शहरों में तो हड़तालें कभी रुकती ही नहीं। इसलिए यह बोधगम्य बात है कि वर्ग-सचेत मज़दूर तथा समाजवादी कार्यकर्ता हड़तालों के महत्त्व, उन्हें संचालित करने की विधियों तथा उनमें भाग लेने वाले समाजवादियों के कार्यभारों के प्रश्न में अधिकाधिक सतत रूप में दिलचस्पी लेते हैं।

हम यहाँ इन प्रश्नों के विषय में अपने विचारों की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे। अपने पहले लेख में हमारी योजना आमतौर पर मज़दूर वर्ग आन्दोलन में हड़तालों के महत्व की चर्चा करने की है; दूसरे लेख में हम रूस में हड़ताल-विरोधी क़ानूनों की चर्चा करेंगे तथा तीसरे में इस बात की चर्चा करेंगे कि रूस में हड़तालें किस तरह की जाती थीं और की जाती हैं तथा उनके प्रति वर्ग-सचेत मज़दूरों को क्या रुख़ अपनाना चाहिए।*

1

सबसे पहले हमें हड़तालों के शुरू होने और फैलने का कारण ढूँढ़ना चाहिए। यदि कोई आदमी हड़तालों को याद करेगा, जिनकी उसे व्यक्तिगत अनुभव से, दूसरों से सुनी रिपोर्टों या अख़बारों की ख़बरों के माध्यम से जानकारी प्राप्त हुई हो, तो वह तुरन्त देख लेगा कि जहाँ कहीं बड़ी फ़ैक्टरियाँ हैं तथा उनकी संख्या बढ़ती जाती है, वहाँ हड़तालें होती तथा फैलती हैं। सैकड़ों (कभी-कभी हज़ारों तक) लोगों को काम पर रखने वाली बड़ी फ़ैक्टरियों में एक भी ऐसी फ़ैक्टरी ढूँढ़ना सम्भव नहीं होगा, जहाँ हड़तालें न हुई हों। जब रूस में केवल चन्द बड़ी फ़ैक्टरियाँ थीं, तो हड़तालें भी कम होती थीं। परन्तु जब से बड़े औद्योगिक ज़िलों और नये नगरों तथा गाँवों में बड़ी फ़ैक्टरियों की तादाद बड़ी तेज़ी से बढ़ती जा रही है, हड़तालें बारम्बार होने लगी हैं।

क्या कारण है कि बड़े पैमाने का फ़ैक्टरी उत्पादन हमेशा हड़तालों को जन्म देता है? इसका कारण यह है कि पूँजीवाद मालिकों के ख़िलाफ़ मज़दूरों के संघर्ष को लाज़िमी तौर पर जन्म देता है तथा जहाँ उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है, वहाँ संघर्ष अनिवार्य ढंग से हड़तालों का रूप ग्रहण करता है।

आइये, इस पर प्रकाश डालें।

पूँजीवाद नाम उस सामाजिक व्यवस्था को दिया गया है, जिसके अन्तर्गत ज़मीन, फ़ैक्टरियाँ, औज़ार, आदि पर थोड़े-से भूस्वामियों तथा पूँजीपतियों का स्वामित्व होता है, जबकि जनसमुदाय के पास कोई सम्पत्ति नहीं होती या बहुत कम होती है तथा वह उजरती मज़दूर बनने के लिए बाध्य होता है। भूस्वामी तथा फ़ैक्टरी मालिक मज़दूरों को मज़दूरी पर रखते हैं और उनसे इस या उस क़िस्म का माल तैयार कराते हैं, जिसे वे मण्डी में बेचते हैं। इसके अलावा फ़ैक्टरी मालिक मज़दूरों को केवल इतनी मज़दूरी देते हैं, जो उनके तथा उनके परिवारों के मात्र निर्वाह की व्यवस्था करती है, जबकि इस परिमाण से ऊपर मज़दूर जितना भी पैदा करता है, वह फ़ैक्टरी मालिक की जेब में उसके मुनाफ़े के रूप में चला जाता है। इस प्रकार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत जन समुदाय दूसरों का उजरती मज़दूर होता है, वह अपने लिए काम नहीं करता, अपितु मज़दूरी पाने के वास्ते मालिकों के लिए काम करता है। यह बात समझ में आने वाली है कि मालिक हमेशा मज़दूरी घटाने का प्रयत्न करते हैं : मज़दूरों को वे जितना कम देंगे, उनका मुनाफ़ा उतना ही अधिक होगा। मज़दूर अधिक से अधिक मज़दूरी हासिल करने का प्रयत्न करते हैं, ताकि अपने परिवारों को पर्याप्त और पौष्टिक भोजन दे सकें, अच्छे घरों में रह सकें, दूसरे लोगों की तरह अच्छे कपड़े पहन सकें तथा भिखारियों की तरह न लगें। इस प्रकार मालिकों तथा मज़दूरों के बीच मज़दूरी की वजह से निरन्तर संघर्ष चल रहा है; मालिक जिस किसी मज़दूर को उपयुक्त समझता है, उसे उजरत पर हासिल करने के लिए स्वतन्त्र है, इसलिए वह सबसे सस्ते मज़दूर की तलाश करता है। मज़दूर अपनी मर्ज़ी के मालिक को अपना श्रम उजरत पर देने के लिए स्वतन्त्र है, इस तरह वह सबसे महँगे मालिक की तलाश करता है, जो उसे सबसे ज़्यादा देगा। मज़दूर चाहे देहात में काम करे या शहर में, वह अपना श्रम उजरत पर चाहे ज़मींदार को दे या धनी किसान को, ठेकेदार को अथवा फ़ैक्टरी मालिक को, वह हमेशा मालिक के साथ मोल-भाव करता है, मज़दूरी के लिए उससे संघर्ष करता है।

परन्तु क्या एक मज़दूर के लिए अकेले संघर्ष करना सम्भव है? मेहनतकश लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है : किसान तबाह हो रहे हैं तथा वे देहात से शहर या फ़ैक्टरी की ओर भाग रहे हैं। ज़मींदार तथा फ़ैक्टरी मालिक मशीनें लगा रहे हैं, जो मज़दूरों को उनके काम से वंचित करती रही हैं। शहरों में बेरोज़गारों की संख्या बढ़ रही है तथा गाँवों में अधिकाधिक लोग भिखारी बनते जा रहे हैं; जो भूखे हैं, वे मज़दूरी के स्तर को निरन्तर नीचे पहुँचा रहे हैं। मज़दूर के लिए अकेले मालिक से टक्कर लेना असम्भव हो जाता है। यदि मज़दूर अच्छी मज़दूरी माँगता है अथवा मज़दूरी में कटौती से असहमत होने का प्रयत्न करता है, तो मालिक उसे बाहर निकल जाने के लिए कहता है, क्योंकि दरवाज़े पर बहुत-से भूखे लोग खड़े होते हैं, जो कम मज़दूरी पर काम करने के लिए सहर्ष तैयार हो जायेंगे।

जब लोग इस हद तक तबाह हो जाते हैं कि शहरों और गाँवों में बेरोज़गारों की हमेशा बहुत बड़ी तादाद रहती है, जब फ़ैक्टरी मालिक अथाह मुनाफ़े खसोटते हैं तथा छोटे मालिकों को करोड़पति बाहर धकेल देते हैं, तब व्यक्तिगत रूप से मज़दूर पूँजीपति के सामने सर्वथा असहाय हो जाता है। तब पूँजीपति लिए मज़दूर को पूरी तरह कुचलना, दास मज़दूर के रूप में उसे और निस्सन्देह अकेले उसे ही नहीं, वरन उसके साथ उसकी पत्नी तथा बच्चों को भी मौत की ओर धकेलना सम्भव हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हम उन व्यवसायों को लें, जिनमें मज़दूर अभी तक क़ानून का संरक्षण हासिल नहीं कर सकते हैं तथा जिनमें वे पूँजीपतियों का प्रतिरोध नहीं कर सकते, तो हम वहाँ असाधारण रूप से लम्बा कार्य-दिवस देखेंगे, जो कभी-कभी 17 से लेकर 19 घण्टे तक का होता है, हम 5 या 6 वर्ष के बच्चों को कमरतोड़ काम करते हुए देखेंगे, हम स्थायी रूप से ऐसे भूखे लोगों की एक पूरी पीढ़ी देखेंगे, जो धीरे-धीरे भूख के कारण मौत के मुँह में पहुँच रहे हैं। उदाहरण है वे मज़दूर, जो पूँजीपतियों के लिए अपने घरों पर काम करते हैं; इसके अलावा कोई भी मज़दूर बीसियों दूसरे उदाहरणों को याद कर सकता है! दासप्रथा या भूदास प्रथा के अन्तर्गत भी मेहनतकश जनता का कभी इतना भयंकर उत्पीड़न नहीं हुआ, जितना कि पूँजीवाद के अन्तर्गत हो रहा है, जब मज़दूर प्रतिरोध नहीं कर पाते या ऐसे क़ानूनों का संरक्षण प्राप्त नहीं कर सकते, जो मालिकों की मनमानी कार्रवाइयों पर अंकुश लगाते हों।

इस तरह अपने को इस घोर दुर्दशा में पहुँचने से रोकने के लिए मज़दूर व्यग्रतापूर्वक संघर्ष शुरू कर देते हैं। मज़दूर यह देखकर कि उनमें से हरेक व्यक्तिश: सर्वथा असहाय है तथा पूँजी का उत्पीड़न उसे कुचल डालने का ख़तरा पैदा कर रहा है, संयुक्त रूप से अपने मालिकों के विरुद्ध विद्रोह शुरू कर देते हैं। मज़दूरों की हड़तालें शुरू हो जाती हैं। आरम्भ में तो मज़दूर यह नहीं समझ पाते कि वे क्या हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं, उनमें इस बात की चेतना का अभाव होता है कि वे अपनी कार्रवाई किस वास्ते कर रहे हैं : वे महज़ मशीनें तोड़ते हैं तथा फ़ैक्टरियों को नष्ट करते हैं। वे फ़ैक्टरी मालिकों को महज़ अपना रोष दिखाना चाहते हैं; वे अभी यह समझे बिना कि उनकी स्थिति इतनी असहाय क्यों है तथा उन्हें किस चीज़ के लिए प्रयास करना चाहिए, असह्य स्थिति से बाहर निकलने के लिए अपनी संयुक्त शक्ति की आज़माइश करते हैं।

तमाम देशों में मज़दूरों के रोष ने पहले छिटपुट विद्रोहों का रूप ग्रहण किया – रूस में पुलिस तथा फ़ैक्टरी मालिक उन्हें "गदर" के नाम से पुकारते हैं। तमाम देशों में इन छुटपुट विद्रोहों ने, एक ओर, कमोबेश शान्तिपूर्ण हड़तालों को और दूसरी ओर, अपनी मुक्ति के हेतु मज़दूर वर्ग के चहुँमुखी संघर्ष को जन्म दिया।

मज़दूर वर्ग के संघर्ष के लिए हड़तालों (काम रोकने) का क्या महत्व है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें पहले हड़तालों की पूरी तस्वीर हासिल करनी चाहिए। जैसाकि हम देख चुके हैं, मज़दूर की मज़दूरी मालिक तथा मज़दूर के बीच क़रार द्वारा निर्धारित होती है और यदि इन परिस्थितियों में निजी तौर पर मज़दूर पूरी तरह असहाय है, तो ज़ाहिर है कि मज़दूरों को अपनी माँगों के लिए संयुक्त रूप से लड़ना चाहिए, वे मालिकों को मज़दूरी घटाने से रोकने के लिए अथवा अधिक मज़दूरी हासिल करने के लिए हड़तालें संगठित करने के वास्ते बाधित होते हैं। यह एक तथ्य है कि पूँजीवादी व्यवस्था वाले हर देश में मज़दूरों की हड़तालें होती हैं। सर्वत्र, तमाम यूरोपीय देशों तथा अमरीका में मज़दूर ऐक्यबद्ध न होने पर अपने को असहाय पाते हैं; वे या तो हड़ताल करके या हड़ताल करने की धमकी देकर केवल संयुक्त रूप से ही मालिकों का प्रतिरोध कर सकते हैं। ज्यों-ज्यों पूँजीवाद का विकास होता जाता है, ज्यों-ज्यों फ़ैक्टरियाँ अधिकाधिक तीव्र गति से खुलती जाती हैं, ज्यों-ज्यों छोटे पूँजीपतियों को बड़े पूँजीपति बाहर धकेलते जाते हैं, मज़दूरों द्वारा संयुक्त प्रतिरोध किये जाने की आवश्यकता त्यों-त्यों तात्कालिक होती जाती है, क्योंकि बेरोज़गारी बढ़ती जाती है, पूँजीपतियों के बीच, जो सस्ती से सस्ती लागत पर अपना माल तैयार करने का प्रयास करते हैं (ऐसा करने के वास्ते उन्हें मज़दूरों को कम से कम देना होगा), प्रतियोगिता तीव्र होती जाती है तथा उद्योग में उतार-चढ़ाव अधिक तीक्ष्ण तथा संकटख अधिक उग्र होते जाते हैं। जब उद्योग फलता-फूलता है, फ़ैक्टरी मालिक बहुत मुनाफ़ा कमाते हैं, परन्तु वे उसमें मज़दूरों को भागीदार बनाने की बात नहीं सोचते। परन्तु जब संकट पैदा हो जाता है, तो फ़ैक्टरी मालिक नुक़सान मज़दूरों के मत्थे मढ़ने का प्रयत्न करते हैं। पूँजीवादी समाज में हड़तालों की आवश्यकता को यूरोपीय देशों में हरेक इस हद तक स्वीकार कर चुका है कि उन देशों में क़ानून हड़तालें संगठित किये जाने की मनाही नहीं करता; केवल रूस में ही हड़तालों के विरुद्ध भयावह क़ानून अब भी लागू है (इन क़ानूनों और उनके लागू किये जाने के बारे में हम किसी और मौक़े पर बात करेंगे)।

कुछ भी हो, हड़तालें जो ठीक पूँजीवादी समाज के स्वरूप के कारण जन्म लेती हैं, समाज की उस व्यवस्था के विरुद्ध मज़दूर वर्ग के संघर्ष की शुरुआत की द्योतक होती हैं। अमीर पूँजीपतियों का अलग-अलग, सम्पत्तिहीन मज़दूरों द्वारा सामना किया जाना मज़दूरों के पूर्ण दास बनने का द्योतक होता है। परन्तु जब ये ही सम्पत्तिहीन मज़दूर ऐक्यबद्ध हो जाते हैं, तो स्थिति बदल जाती है। यदि पूँजीपति ऐसे मज़दूर नहीं ढूँढ़ पायें, जो अपनी श्रम-शक्ति को पूँजीपतियों के औज़ारों और सामग्री पर लगाने और नयी दौलत पैदा करने के लिए तैयार हों, तो फिर कोई भी दौलत पूँजीपतियों के लिए लाभकर नहीं हो सकती। जब तक मज़दूरों को पूँजीपतियों के साथ निजी आधार पर सम्बन्ध रखना पड़ता है, वे ऐसे वास्तविक दास बने रहते हैं, जिन्हें रोटी का एक टुकड़ा हासिल कर सकने के लिए दूसरे को लाभ पहुँचाने के वास्ते निरन्तर काम करना होगा, जिन्हें हमेशा आज्ञाकारी तथा मूक उजरती नौकर बना रहना होगा। परन्तु जब मज़दूर संयुक्त रूप में अपनी माँग पेश करते हैं और थैलीशाहों के आगे झुकने से इंकार करते हैं, तो वे दास नहीं रहते, वे इन्सान बन जाते हैं, वे यह माँग करने लगते हैं कि उनके श्रम से मुट्ठीभर परजीवियों का ही हितसाधन नहीं होना चाहिए, अपितु उसे इन लोगों को भी, जो काम करते हैं, इन्सानों की तरह जीवनयापन करने में सक्षम बनाना चाहिए। दास स्वामी बनने की माँग पेश करने लगते हैं – वे उस तरह काम करना और रहना नहीं चाहते, जिस तरह ज़मींदार और पूँजीपति चाहते हैं, बल्कि वे उस तरह काम करना और रहना चाहते हैं, जिस तरह स्वयं मेहनतकश जन चाहते हैं। हड़तालें इसलिए पूँजीपतियों में सदा भय पैदा करती हैं कि वे उनकी प्रभुता पर कुठाराघात करती हैं।

जर्मन मज़दूरों का एक गीत मज़दूर वर्ग के बारे में कहता है : "यदि चाहे तुम्हारी बलशाली भुजाएँ, हो जायेंगे सारे चक्के जाम"। और यह एक वास्तविकता है : फ़ैक्टरियाँ, ज़मींदार की ज़मीन, मशीनें, रेलें, आदि से एक विराट यन्त्र के चक्के की तरह हैं, उस यन्त्र की तरह, जो

(पेज 12 पर जारी)

हड़तालों के बारे में – लेनिन

(पेज 11 से आगे)

विभिन्न उत्पाद हासिल करता है, उन्हें परिष्कृत करता है तथा निर्दिष्ट स्थान को भेजता है। इस पूरे यन्त्र को गतिमान करता है मज़दूर, जो खेत जोतता है, ख़ानों से खनिज पदार्थ निकालता है, फ़ैक्टरियों में माल तैयार करता है, ख़ानों से खनिज पदार्थ निकालता है, फ़ैक्टरियों में माल तैयार करता है, मकानों, वर्कशापों और रेलों का निर्माण करता है। जब मज़दूर काम करने से इन्कार कर देते हैं, इस पूरे यन्त्र के ठप्प होने का ख़तरा पैदा हो जाता है। हरेक हड़ताल पूँजीपतियों को याद दिलाती है कि वे नहीं, वरन मज़दूर, वे मज़दूर वास्तविक स्वामी हैं, जो अधिकाधिक ऊँचे स्वर में अपने अधिकारों की घोषणा कर रहे हैं। हरेक हड़ताल मज़दूरों को याद दिलाती है कि उनकी स्थिति असहाय नहीं है, कि वे अकेले नहीं हैं। ज़रा देखें कि हड़तालों का स्वयं हड़तालियों पर तथा किसी पड़ोस की या नज़दीक की फ़ैक्टरियों में या एक ही उद्योग की फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों, दोनों पर कितना ज़बरदस्त प्रभाव पड़ता है। सामान्य, शान्तिपूर्ण समय में मज़दूर बड़बड़ाहट किये बिना अपना काम करता है, मालिक की बात का प्रतिवाद नहीं करता, अपनी हालत पर बहस नहीं करता। हड़तालों के समय वह अपनी माँगें ऊँची आवाज़ में पेश करता है, वह मालिकों को उनके सारे दुर्व्यवहारों की याद दिलाता है, वह अपने अधिकारों का दावा करता है, वह केवल अपने और अपनी मज़दूरी के बारे में नहीं सोचता, वरन अपने सारे साथियों के बारे में सोचता है, जिन्होंने उसके साथ-साथ औज़ार नीचे रख दिये हैं और जो तक़लीफ़ों की परवाह किये बिना मज़दूरों के ध्येय के लिए उठ खड़े हुए हैं। मेहनतकश जनों के लिए प्रत्येक हड़ताल का अर्थ है बहुत सारी तक़लीफ़ें, भयंकर तक़लीफ़ें, जिनकी तुलना केवल युद्ध द्वारा प्रस्तुत विपदाओं से की जा सकती है – भूखे परिवार, मज़दूरी से हाथ धो बैठना, अक्सर गिरफ़्तारियाँ, शहरों से भगा दिया जाना, जहाँ उनके घरबार होते हैं तथा वे रोज़गार पर लगे होते हैं। इन तमाम तक़लीफ़ों के बावजूद मज़दूर उनसे घृणा करते हैं, जो अपने साथियों को छोड़कर भाग जाते हैं तथा मालिकों के साथ सौदेबाज़ी करते हैं। हड़तालों द्वारा प्रस्तुत इन सारी तकलीफ़ों के बावजूद पड़ोस की फ़ैक्टरियों के मज़दूर उस समय नया साहस प्राप्त करते हैं, जब वे देखते हैं कि उनके साथी संघर्ष में जुट गये हैं। अंग्रेज़ मज़दूरों की हड़तालों के बारे में समाजवाद के महान शिक्षक एंगेल्स ने कहा था : "जो लोग एक बुर्जुआ को झुकाने के लिए इतना कुछ सहते हैं, वे पूरे बुर्जुआ वर्ग की शक्ति को चकनाचूर करने में समर्थ होंगे।" बहुधा एक फ़ैक्टरी में हड़ताल अनेकानेक फ़ैक्टरियों में हड़तालों की तुरन्त शुरुआत के लिए पर्याप्त होती है। हड़तालों का कितना बड़ा नैतिक प्रभाव पड़ता है, कैसे वे मज़दूरों को प्रभावित करती हैं, जो देखते हैं कि उनके साथी दास नहीं रह गये हैं और, भले ही कुछ समय के लिए, उनका और अमीर का दर्जा बराबर हो गया है! प्रत्येक हड़ताल समाजवाद के विचार को, पूँजी के उत्पीड़न से मुक्ति के लिए पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष के विचार को बहुत सशक्त ढंग से मज़दूर के दिमाग़ में लाती है। प्राय: होता यह है कि किसी फ़ैक्टरी या किसी उद्योग की शाखा या शहर के मज़दूरों को हड़ताल के शुरू होने से पहले समाजवाद के बारे में पता ही नहीं होता और उन्होंने उसकी बात कभी सोची ही नहीं होती। परन्तु हड़ताल के बाद अध्ययन मण्डलियाँ तथा संस्थाएँ उनके बीच अधिक व्यापक होती जाती हैं तथा अधिकाधिक मज़दूर समाजवादी बनते जाते हैं।

हड़ताल मज़दूरों को सिखाती है कि मालिकों की शक्ति तथा मज़दूरों की शक्ति किसमें निहित होती है; वह उन्हें केवल अपने मालिक और केवल अपने साथियों के बारे में ही नहीं, वरन तमाम मालिकों, पूँजीपतियों के पूरे वर्ग, मज़दूरों के पूरे वर्ग के बारे में सोचना सिखाती है। जब किसी फ़ैक्टरी का मालिक, जिसने मज़दूरों की कई पीढ़ियों के परिश्रम के बल पर करोड़ों की धनराशि जमा की है, मज़दूरी में मामूली वृद्धि करने से इन्कार करता है, यही नहीं, उसे घटाने का प्रयत्न तक करता है और मज़दूरों द्वारा प्रतिरोध किये जाने की दशा में हज़ारों भूखे परिवारों को सड़कों पर धकेल देता है, तो मज़दूरों के सामने यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीपति वर्ग समग्र रूप में समग्र मज़दूर वर्ग का दुश्मन है और मज़दूर केवल अपने ऊपर और अपनी संयुक्त कार्रवाई पर ही भरोसा कर सकते हैं। अक्सर होता यह है कि फ़ैक्टरी का मालिक मज़दूरों की आँखों में धूल झोंकने, अपने को उपकारी के रूप में पेश करने, मज़दूरों के आगे रोटी के चन्द छोटे-छोटे टुकड़े फेंककर या झूठे वचन देकर उनके शोषण पर पर्दा डालने के लिए कुछ भी नहीं उठा रखता। हड़ताल मज़दूरों को यह दिखाकर कि उनका "उपकारी" तो भेड़ की खाल ओढ़े भेड़िया है, इस धोखाधड़ी को एक ही वार में ख़त्म कर देती है।

इसके अलावा हड़ताल पूँजीपतियों के ही नहीं, वरन सरकार तथा क़ानूनों के भी स्वरूप को मज़दूरों की आँखों के सामने स्पष्ट कर देती है। जिस तरह फ़ैक्टरियों के मालिक अपने को मज़दूरों के उपकारी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं, ठीक उसी तरह सरकारी अफ़सर और उनके चाटुकार मज़दूरों को यह यक़ीन दिलाने का प्रयत्न करते हैं कि ज़ार तथा ज़ारशाही सरकार न्याय की अपेक्षानुसार फ़ैक्टरियों के मालिकों तथा मज़दूरों, दोनों का समान रूप से ध्यान रखते हैं। मज़दूर क़ानून नहीं जानता, उसका सरकारी अफ़सरों, ख़ास तौर पर ऊँचे पदाधिकारियों के साथ सम्पर्क नहीं होता, फलस्वरूप वह अक्सर इन सब बातों पर विश्वास कर लेता है। इतने में हड़ताल होती है। सरकारी अभियोजक, फ़ैक्टरी इंस्पेक्टर, पुलिस और कभी-कभी सैनिक क़ारखाने में पहुँच जाते हैं। मज़दूरों को पता चलता है कि उन्होंने क़ानून तोड़ा है : मालिकों को क़ानून इकट्ठा होने और मज़दूरों की मज़दूरी घटाने और खुलेआम विचार-विमर्श करने की अनुमति देता है। परन्तु मज़दूर अगर कोई संयुक्त करार करते हैं, तो उन्हें अपराधी घोषित किया जाता है। मज़दूरों को उनके घरों से बेदख़ल किया जाता है, पुलिस उन दुकानों को बन्द कर देती है, जहाँ से मज़दूर खाने-पीने की चीज़ें उधार ले सकते हैं, उस समय भी जब मज़दूर का आचरण शान्तिपूर्ण होता है, सैनिकों को उनके ख़िलाफ़ भड़काने का प्रयत्न किया जाता है। सैनिकों को मज़दूरों पर गोली चलाने का आदेश दिया जाता है और जब वे भागती भीड़ पर गोली चलाकर निरस्त्र मज़दूरों को मार डालते हैं, तो ज़ार स्वयं सैनिकों के प्रति आभार-प्रदर्शन करता है (इस तरह ज़ार ने 1895 में यारोस्लाव्ल में हड़ताली मज़दूरों की हत्या करने वाले सैनिकों को धन्यवाद दिया था)। हर मज़दूर के सामने यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ज़ारशाही सरकार उसकी सबसे बड़ी शत्रु है, क्योंकि वह पूँजीपतियों की रक्षा करती है तथा मज़दूरों के हाथ-पाँव बाँध देती है। मज़दूर यह समझने लगते हैं कि क़ानून केवल अमीरों के हितार्थ बनाये जाते हैं, कि सरकारी अधिकारी उनके हितों की रक्षा करते हैं, कि मेहनतकश जनता की ज़ुबान बन्द कर दी जाती है, उसे इस बात की अनुमति नहीं दी जाती कि वह अपनी माँगें पेश करे, कि मज़दूर वर्ग को हड़ताल करने का अधिकार, मज़दूर समाचारपत्र प्रकाशित करने का अधिकार, क़ानून बनानेवाली और क़ानूनों को लागू करने के कार्य की देखरेख करने वाली राष्ट्रीय सभा में भाग लेने का अधिकार अवश्य हासिल करना होगा। सरकार ख़ुद अच्छी तरह जानती है कि हड़तालें मज़दूरों की आँखें खोलती हैं और इस कारण वह हड़तालों से डरती है तथा उन्हें यथाशीघ्र रोकने का प्रयत्न करती है। एक जर्मन गृहमन्त्री ने, जो समाजवादियों तथा वर्ग-सचेत मज़दूरों को निरन्तर सताने के लिए बदनाम था, जन प्रतिनिधियों के सामने यह अकारण ही नहीं कहा था : "हर हड़ताल के पीछे क्रान्ति का कई फनोंवाला साँप (दैत्य) होता है"; प्रत्येक हड़ताल मज़दूरों में इस अवबोध को दृढ़ बनाती तथा विकसित करती है कि सरकार उनकी दुश्मन है तथा मज़दूर वर्ग को जनता के अधिकारों के लिए संघर्ष करने के वास्ते अपने को तैयार करना चाहिए।

अत: हड़तालें मज़दूरों को ऐक्यबद्ध होना सिखाती हैं; उन्हें बताती हैं कि वे केवल ऐक्यबद्ध होने पर ही पूँजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष कर सकते हैं; हड़तालें मज़दूरों को क़ारखानों के मालिकों के पूरे वर्ग के विरुद्ध, स्वेच्छाचारी, पुलिस सरकार के विरुद्ध पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष की बात सोचना सिखाती है। यही कारण है कि समाजवादी लोग हड़तालों को "युद्ध का विद्यालय", ऐसा विद्यालय कहते हैं, जिसमें मज़दूर पूरी जनता को, श्रम करने वाले तमाम लोगों को सरकारी अधिकारियों के जुए से, पूँजी के जुए से मुक्त करने के लिए अपने दुश्मनों के ख़िलाफ़ युद्ध करना सीखते हैं।

परन्तु "युद्ध का विद्यालय" स्वयं युद्ध नहीं है। जब हड़तालें मज़दूरों के बीच व्यापक रूप से फैली होती हैं, कुछ मज़दूर (कुछ समाजवादियों समेत) यह सोचने लगते हैं कि मज़दूर वर्ग अपने को महज हड़तालों, हड़ताल कोषों या हड़ताल संस्थाओं तक सीमित रख सकता है, कि अकेले हड़तालों के ज़रिये मज़दूर वर्ग अपने हालात में पर्याप्त सुधार ला सकता है, यही नहीं, अपनी मुक्ति भी हासिल कर सकता है। यह देखकर कि संयुक्त मज़दूर वर्ग में, यही नहीं, छोटी हड़तालों तक में कितनी शक्ति होती है, कुछ सोचते हैं कि मज़दूर पूँजीपतियों तथा सरकार से जो कुछ भी हासिल करना चाहते हैं, उसके लिए बस इतना काफ़ी है कि मज़दूर वर्ग पूरे देश में आम हड़ताल संगठित करे। इसी तरह का विचार अन्य देशों के मज़दूरों द्वारा भी व्यक्त किया गया था, जब मज़दूर वर्ग आन्दोलन अपने आरम्भिक चरणों में था तथा मज़दूर अभी बहुत अनुभवहीन थे। पर यह ग़लत विचार है। हड़तालें तो उन उपायों में से एक हैं, जिनके ज़रिये मज़दूर वर्ग अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करता है, परन्तु वे एकमात्र उपाय नहीं हैं। यदि मज़दूर संघर्ष करने के अन्य उपायों की ओर ध्यान नहीं देते, तो वे मज़दूर वर्ग की संवृद्धि तथा सफलताओं की गति धीमी कर देंगे। यह सच है कि यदि हड़तालों को कामयाब बनाना है, तो हड़तालों के दौरान मज़दूरों के निर्वाह के लिए कोषों का होना ज़रूरी है। ऐसे मज़दूर कोष (आम तौर पर उद्योग की पृथक शाखाओं, पृथक व्यवसायों तथा वर्कशापों में मज़दूर कोष) तमाम देशों में रखे जाते हैं। परन्तु यहाँ रूस में यह बहुत कठिन है, क्योंकि पुलिस उनका पता लगाती है, धन जब्त कर लेती है तथा मज़दूरों को गिरफ़्तार करती है। निस्सन्देह, मज़दूर उन्हें पुलिस से छुपाने में सफल रहते हैं; स्वभावतया ऐसे कोषों को संगठित करना महत्त्वपूर्ण है और हम मज़दूरों को उन्हें संगठित करने के विरुद्ध परामर्श नहीं देना चाहते। परन्तु यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि मज़दूर कोष क़ानून द्वारा निषिद्ध होने पर वे चन्दा देनेवालों को बड़ी संख्या में आकृष्ट करेंगे; और जब तक ऐसे संगठनों की सदस्य संख्या कम होगी, ये कोष बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं होंगे। इसके अलावा उन देशों तक में, जहाँ मज़दूर यूनियनें खुलेआम विद्यमान हैं तथा उनके पास बहुत बड़े कोष हैं, मज़दूर वर्ग संघर्ष के साधन के रूप में अपने को हड़तालों तक सीमित नहीं कर सकता। जो कुछ आवश्यक है, वह उद्योग के मामलों में एक विघ्न (उदाहरण के लिए संकट, जो रूस में आज समीप आता जा रहा है) है, और क़ारखानों के मालिक तो जानबूझकर हड़तालें तक करायेंगे, क्योंकि कुछ समय के लिए काम का बन्द होना तथा मज़दूर कोषों का घटना उनके लिए लाभप्रद होता है। इसलिए मज़दूर किसी भी सूरत में अपने को हड़ताल सम्बन्धी कार्रवाइयों तथा हड़ताल सम्बन्धी संस्थाओं तक सीमित नहीं कर सकते। दूसरे, हड़तालें वहीं सफल हो सकती हैं, जहाँ मज़दूर पर्याप्त रूप में वर्ग-सचेत होते हैं, जहाँ वे हड़तालें करने के लिए सही अवसर चुनने में सक्षम होते हैं, जहाँ वे यह जानते हैं कि अपनी माँगें किस तरह पेश की जाती हैं, और जहाँ उनके समाजवादियों के साथ सम्बन्ध होते हैं और उनके ज़रिये पर्चे और पैम्फ़लेट हासिल कर सकते हैं। रूस में ऐसे मज़दूर अभी बहुत कम हैं, उनकी तादाद बढ़ाने के लिए हर चेष्टा की जानी चाहिए, ताकि मज़दूर वर्ग का ध्येय जन साधारण को बताया जा सके, उन्हें समाजवाद तथा मज़दूर वर्ग के संघर्ष से अवगत कराया जा सके। समाजवादियों तथा वर्ग-सचेत मज़दूरों को इस उद्देश्य के लिए समाजवादी मज़दूर वर्ग पार्टी संगठित कर यह कार्यभार संयुक्त रूप से सँभालना चाहिए। तीसरे, जैसाकि हम देख चुके हैं, हड़तालें मज़दूरों को बताती हैं कि सरकार उनकी शत्रु है, कि सरकार के विरुद्ध संघर्ष चलाते रहना चाहिए। वस्तुत: हड़तालों ने ही धीरे-धीरे तमाम देशों के मज़दूर वर्ग को मज़दूरों के अधिकारों तथा समग्र रूप में जनता के अधिकारों के लिए सरकारों के ख़िलाफ़ संघर्ष करना सिखाया है। जैसाकि हम कह चुके हैं, केवल समाजवादी मज़दूर पार्टी ही मज़दूरों के बीच सरकार तथा मज़दूर वर्ग के ध्येय की सच्ची अवधारणा का प्रचार करके यह संघर्ष चला सकती है। किसी और अवसर पर हम ख़ास तौर पर इस बात की चर्चा करेंगे कि रूस में हड़तालें किस तरह संचालित होती हैं और वर्ग सचेत मज़दूरों को कैसे उनका उपयोग करना चाहिए। यहाँ हम यह इंगित कर दें कि हड़तालें जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं, स्वयं युद्ध नहीं, वरन "युद्ध का विद्यालय" हैं, कि हड़तालें संघर्ष का केवल एक साधन हैं, मज़दूर वर्ग आन्दोलन का केवल एक रूप हैं। अलग-अलग हड़तालों से मज़दूर श्रम करने वाले तमाम लोगों की मुक्ति के लिए पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष की ओर बढ़ सकते हैं और उन्हें बढ़ना चाहिए, और वे वस्तुत: तमाम देशों में उस ओर बढ़ रहे हैं। जब तमाम वर्ग-सचेत मज़दूर समाजवादी हो जायेंगे, अर्थात जब वे इस मुक्ति के लिए प्रयास करेंगे, जब वे मज़दूरों के बीच समाजवाद का प्रसार कर सकने, मज़दूरों को अपने दुश्मनों के विरुद्ध संघर्ष के तमाम तरीक़े सिखा सकने के लिए पूरे देश में ऐक्यबद्ध हो जायेंगे, जब वे एक ऐसी समाजवादी पार्टी का निर्माण करेंगे, जो सरकारी उत्पीड़न से समग्र जनता की मुक्ति के लिए, पूँजी के जुए से समस्त मेहनतकश जनता की मुक्ति के लिए संघर्ष करती है, केवल तभी मज़दूर वर्ग तमाम देशों के मज़दूरों के उस महान आन्दोलन का अभिन्न अंग बन सकेगा, जो समस्त मज़दूरों को ऐक्यबद्ध करता है तथा जो लाल झण्डा ऊपर उठाता है, जिस पर ये शब्द लिखे हुए हैं : "दुनिया के मज़दूरो, एक हो!"

1899 के अन्त में लिखित। पहले पहल 1924 में प्रकाशित। अंग्रेज़ी से अनूदित

* हम उद्योग में संकटों तथा मज़दूरों के लिए उनके महत्त्व की अन्यत्र विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। हम यहाँ केवल इतना कहेंगे कि हाल के वर्षों में रूस में औद्योगिक स्थिति ठीक-ठाक रही है, उद्योग "फल-फूल" रहा है, परन्तु अब (1899 के अन्त में) इस बात के स्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे हैं कि इस "फलने-फूलने" का अन्त संकट के रूप में होगा : वस्तुओं की बिक्री में कठिनाइयाँ, फ़ैक्टरी मालिकों का दिवालिया होना, छोटे मालिकों का तबाह होना तथा मज़दूरों के लिए भयानक विपदाएँ (बेरोज़गारी, कम मज़दूरी, आदि)।

कनाडा की खनन कम्पनियों का लूटतन्त्र और पूँजीपतियों, सरकार तथा एनजीओ का गँठजोड़

गत 13 मई को तुर्की में एक कोयला खदान में विस्फोट होने से 300 से ज़्यादा मज़दूरों की मौत हो गयी। पूँजीपतियों की मुनाफ़े की हवस तथा सरकारों द्वारा पूँजीपतियों का सरेआम साथ देने के चलते विश्वभर में होने वाले ऐसे क़त्लेआमों में यह न तो पहला था और न ही आख़िरी। चीन में हर साल कई हज़ार मज़दूर खदानों में मारे जाते हैं, तुर्की में ही 13,000 मज़दूर हर साल किसी न किसी रूप में खदानों में होने वाली "दुर्घटनाओं" से ज़ख़्मी होते हैं। लेकिन क्रूरता का यह तो सिर्फ़ एक पक्ष ही है। खदान कम्पनियाँ पूरी दुनिया में खनन जारी रखने तथा नयी जगहों पर खनन करने के लिए स्थानीय लोगों के विरोध को बेरहमी से कुचलती हैं और पर्यावरण को भयंकर नुक़सान पहुँचाती हैं। इस काम में सबसे ज़्यादा कुख्यात कनाडा की खदान कम्पनियाँ हैं। पूरे विश्व में खनन उद्योग में लगी कम्पनियों में से 75 प्रतिशत का मुख्यालय कनाडा के किसी न किसी बड़े शहर में है। कनाडा में पंजीकृत खदान कम्पनियों के कारनामों में जनसंघर्षों के नेताओं का क़त्ल, औरतों से सामूहिक बलात्कार तथा आम लोगों के क़त्लेआम शामिल हैं।

– कनाडा की खदान कम्पनी 'हडबेअ मिनरल्स' के सुरक्षागार्डों ने 2009 में लातिन अमेरिका के देश ग्वाटेमाला में अडोल्फ़ो चामन का क़त्ल कर दिया। वे कम्पनी द्वारा पीने के पानी के स्रोतों को प्रदूषित करने के ख़िलाफ़ स्थानीय लोगों के संघर्ष के नेता थे। इसी कम्पनी ने 2007 में ग्वाटेमाला में ही एक ज़मीन का टुकड़ा क़ब्ज़ाने के लिए 11 स्थानीय औरतों का सामूहिक बलात्कार करवाया।

– सोने के खनन की सबसे बड़ी कम्पनी 'बारिक गोल्ड' ने वर्ष 2011 में तंजानिया में खनन का विरोध कर रहे स्थानीय लोगों तथा कार्यकर्ताओं के कई क़त्लेआमों को अंजाम दिया है। एक और अफ़्रीकी देश पापुआ न्यू गिनी में इसी कम्पनी के सुरक्षागार्डों तथा खदान पर तैनात स्थानीय पुलिस ने सालोंसाल सैकड़ों स्थानीय औरतों का बलात्कार किया।

– कनाडा के वैंकूवर स्थित 'चाइना गोल्ड इण्टरनेशनल' कम्पनी की चीन में स्थित खदान में 83 मज़दूर "खदान दुर्घटना" में मारे गये, क्योंकि कम्पनी ने खदान में फँसे लोगों को बचाने के लिए कुछ नहीं किया। लोगों द्वारा विरोध प्रदर्शन होने पर उनको दबाने के लिए 5000 की बड़ी संख्या में चीनी फ़ौजी भेजे गये।

– वैंकूवर स्थित एक और कम्पनी 'पेसिफ़िक रिम' लातिन अमेरिका के ग़रीब देश अल सल्वाडोर से 31.5 करोड़ डॉलर जुर्माना वसूल करने के लिए मुकदमा किये हुए है। अल सल्वाडोर की सरकार का कसूर यह है कि उसने इस कम्पनी को लेम्पा नदी के पास खनन की अनुमति देने से मना कर दिया, क्योंकि यह नदी देश के 60 प्रतिशत लोगों के पीने का पानी का एकमात्र स्रोत है और खनन से यह नदी प्रदूषित हो जाती।

– 2005 में 'अनविल माइनिंग लिमिटेड' ने कांगो की सेना को साजोसामान तथा ट्रांसपोर्ट में मदद की, इसी मदद के चलते कांगो की सेना ने कांगो के एक तटीय शहर किल्वा में हज़ारों लोगों का क़त्लेआम किया।

यह तो सिर्फ़ चन्द उदाहरण हैं, कनाडा की कम्पनियों द्वारा मानवाधिकारों को ठेंगा दिखाने तथा पर्यावरण को तबाह करने की कथा बहुत लम्बी है। 2009 में इन कम्पनियों के कुकर्मों का बोझ इतना भारी हो गया कि कनाडा की सरकार को रिपोर्ट तैयार करने तथा क़ानून बनाने, स्थानीय लोगों की भलाई के प्रोग्राम बनाने जैसे पाखण्ड करने पर मजबूर होना पड़ा।

कनाडा में पंजीकृत लगभग 1300 खदान कम्पनियों में से बहुत सी कम्पनियों का मालिकाना कनाडा के नागरिकों के पास नहीं है, लेकिन फिर भी ज़्यादातर खदान कम्पनियाँ कनाडा को अपना मुख्य ठिकाना बनाती हैं, इसका कोई कारण तो होगा ही। असल में कनाडा की सरकार खदान कम्पनियों पर कनाडा में पंजीकरण करवाने के लिए कोई सख्त शर्त नहीं लगाती। मसलन ये कम्पनियाँ विदेशों में अपने कारोबार के दौरान क्या करती हैं, इसमें कनाडा की सरकार बिल्कुल दख़ल नहीं देती। लेकिन अगर किसी देश की सरकार कनाडा में पंजीकृत किसी खदान कम्पनी को अपने यहाँ खनन करने से रोकती है, उस पर श्रम क़ानून लागू करने की कोशिश करती है तो कनाडा के राजदूत तथा कनाडा की सरकार उस देश की सरकार पर दबाव डालती है, उसे मजबूर करती है कि वह ऐसा न करे, या फिर स्थानीय सरकार तथा कम्पनी में समझौता करवाती है। इसके अलावा, जनविरोध से निपटने के लिए स्थानीय सरकार को कम्पनी को पुलिस तथा अर्धसैनिक बल मुहैया करवाने के लिए राजी करती है। कनाडा में पंजीकृत कम्पनी अन्य देशों में टैक्स देती है या नहीं, इससे भी कनाडा सरकार को कोई लेना-देना नहीं। कनाडा की सरकार ख़ुद भी खदान कम्पनियों को क़ानूनों के झंझट से मुक्त रखती है। अब अगर ऐसी सरकार मिले तो कोई पूँजीपति कनाडा क्यों नहीं जाना चाहेगा। अब जब कनाडा की खदान कम्पनियों के कुकर्मों की पोल खुलने लगी है (जिसका उनके बिज़नेस पर बुरा असर पड़ सकता है), तो कनाडा की सरकार उनकी छवि सँवारने तथा उनको "सामाजिक तौर पर ज़िम्मेदार कारपोरेट" दिखाने के लिए जनता की जेबों से निकाले गये टैक्स के पैसों को कम्पनियों के हितों पर कुर्बान कर रही है।

कुछ साल पहले कनाडा की सरकार ने "पहलक़दमी" दिखाते हुए खदान कम्पनियों और कई सारी एनजीओ (ग़ैर-सरकारी संस्था) को मिलकर काम करने के लिए राजी किया। 'वर्ल्ड विज़न', 'प्लान कनाडा', 'सेव द चिल्ड्रेन कनाडा' आदि जैसी एनजीओ अब कनाडा की खदान कम्पनियों के इलाक़ों में स्थानीय लोगों की "भलाई" तथा ग़रीबी "दूर करने" का काम कर रही हैं और दुनिया में कनाडा की खदान कम्पनियों के ख़ूँखार रक्त-सने चेहरों पर "सामाजिक ज़िम्मेदारी" का नक़ाब फिट करने के काम में व्यस्त हैं। मगर एनजीओ द्वारा किये जाने वाले "समाज भलाई" के कामों का ख़र्चा कनाडा की सरकार दे रही है। टैक्सों से इकट्ठा हुए जनता के पैसे में से करोड़ों डॉलर इन एनजीओ को दिये जा रहे हैं जबकि मुनाफ़ा कम्पनियाँ पीट रही हैं। और तो और, सरकार ने नियम बनाया है कि उसी एनजीओ को सरकारी "सहायता" मिलेगी जो किसी न किसी खदान कम्पनी के साथ मिलकर काम करेगी। अभी पिछले ही साल, खनन से सम्बन्धित तकनीक को विकसित करने की ख़ातिर कनाडा की सरकार ने 2.5 करोड़ डॉलर की लागत से एक तकनीकी संस्था स्थापित की है। यहाँ विकसित हुई तकनीक से मुनाफ़ा तो कम्पनियाँ कमायेंगी, मगर इस संस्था को खड़ा करने का ख़र्चा जनता के सिर पर पड़ा है। और यही सरकार, लेबर यूनियनों तथा जनतक स्वास्थ्य सुविधा के ढाँचे पर लगातार हमले कर रही है कि सभी को अच्छी सुविधाएँ देने के लिए सरकार के पास पैसा नहीं है।

इस तरह सिर्फ़ भारत ही नहीं पूरी दुनिया की सरकारें पूँजीपतियों की सेवा में लगी रहती हैं। सरकारें किस तरह पूँजीपतियों की 'मैनेजिंग कमेटी' की तरह काम करती हैं, कनाडा की खदान कम्पनियों के काले कारनामों की कथा एक बार फिर इस सत्य को अच्छी तरह से साफ़-साफ़ दिखाती है। साथ ही साथ, एनजीओ किस तरह कारपोरेटों के हितों के लिए काम करती हैं, यह भी साफ़ दिखता है। असल में पूँजीवाद में आम लोगों के हिस्से हर तरह का शोषण-दमन, बदहाली-कंगाली ही आती है, चाहे देश कोई भी हो। आम लोगों की बेहतरी पूँजीवाद से मुक्ति से ही सम्भव है।

– अमृतपाल

दुनियाभर में अमानवीय शोषण-उत्पीड़न के शिकार हैं प्रवासी कामगार

(पेज 10 से आगे)

कैम्प का निर्माण, प्रवासी मज़दूर हर जगह भयंकर, असुरक्षित स्थितियों में काम करते हैं।

जर्मनी की पिछली सरकार ने उद्योग में बड़े पैमाने पर ठेकाप्रथा लागू की और समस्त उत्पादन को उप-ठेकेदारों को आउटसोर्स करने का इन्तज़ाम किया। यह उप-ठेकेदार मज़दूरों से कई इकरारनामे करते हैं, ताकि सम्बन्धित श्रम नियमों को बाईपास किया जा सके। ऑटो और बरामदी उद्योग के लिए कम वेतन पर अस्थायी मज़दूर यही उप-ठेकेदार मुहैया कराते हैं। ज़्यादातर सुधारवादी ट्रेड-यूनियनें प्रवासी मज़दूरों की माँगों नहीं उठातीं। शासक वर्ग न सिर्फ़ प्रवासी मज़दूरों की कमज़ोर हालत का लाभ उठाता है, बल्कि स्थानीय मज़दूरों को उनके ख़िलाफ़ खड़ा करके मज़दूर वर्ग की एकता को भी तोड़ता है। ये तरकीबें सभी देशों में पूँजीपति वर्ग की तरफ़ से इस्तेमाल की जाती हैं।

मलेशिया

मलेशिया ने सरकारी तौर पर प्रवासी मज़दूरों के लिए अपने दरवाज़े 1990 के दशक में खोले जब निर्माण क्षेत्र और फ़ार्मों में श्रम की कमी पैदा हुई। सन् 2000, इसमें उद्योग और सेवा क्षेत्र को भी शामिल कर लिया गया। पड़ोसी देशों – इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स और थाईलैण्ड से मज़दूर तो इस सरकारी नीति से पहले भी मलेशिया में काम के लिए आते रहे हैं। भारत से भी अच्छी-ख़ासी संख्या में मज़दूर मलेशिया में हैं। आँकड़ों के मुताबिक़ 2010 में, लगभग 18 लाख प्रवासी मज़दूर मलेशिया में अलग-अलग क्षेत्रों में काम कर रहे थे। इन मज़दूरों की लूट कई तरीक़ों से होती है।

पहला, प्रवासी मज़दूर एक ही मालिक के साथ बँधे होते हैं। क़ानूनों का उल्लंघन होने पर भी वे मालिक नहीं बदल सकते। या तो उसी मालिक के नीचे काम करो या फिर देश वापस जाओ। दूसरा, मालिक मज़दूरों को लम्बे समय के लिए काम करने को मजबूर कर सकते हैं। 8 घण्टे काम का अधिकार रोज़गार क़ानून में 1998 के संशोधन द्वारा ख़त्म कर दिया गया है। तीसरा, मालिकों को न्यूनतम वेतन देने की ज़रूरत से भी मुक्त रखा गया है। आन्दोलनों के बाद जुलाई 2012 में न्यूनतम वेतन का ऐलान किया गया लेकिन दिसम्बर 2012 में ही 600 मालिकों को एक साल तक की रियायत दे दी गयी। जिन मज़दूरों को न्यूनतम वेतन मिला भी, उनके दूसरे भत्तों में कटौती कर ली गयी और वह पहले वाली स्थिति में ही रह गये। चौथा, ज़्यादातर क़ानून वास्तव में कहीं लागू नहीं होते। अगर कोई मज़दूर अधिकार माँगता है तो ज़्यादातर मामलों में मालिक इकरारनामा ख़त्म कर देता है, जिससे उसका वीज़ा या वर्क परमिट रद्द हो जाता है और क़ानूनी तौर पर उनके लिए मलेशिया में रहने या काम करने के दरवाज़े बन्द हो जाते हैं।

मलेशियाई ट्रेड-यूनियनें दावा करती हैं कि प्रवासियों को भी यूनियन का हिस्सा बनने का अधिकार है। कई प्रवासी मज़दूर ट्रेड-यूनियनों के मेम्बर भी हैं और इसका उन्हें लाभ भी होता है। लेकिन 1955 के रोज़गार एक्ट में 2012 में किये गये संशोधन के तहत एक तीसरी पार्टी, श्रम ठेकेदार को शामिल किया गया है। ये तीसरी पार्टियाँ कम्पनियों को मज़दूर मुहैया करवाती हैं और इन मज़दूरों के साथ ट्रेड यूनियन सीधा सम्बन्ध नहीं रख सकते। ये प्रवासी मज़दूर ट्रेड यूनियनों की तरफ़ से ली गयी सुविधाएँ नहीं ले सकते। यह चलन प्रवासी मज़दूरों से शुरू हुआ, लेकिन अब स्थानीय मज़दूरों भी इसके घेरे में आ गये हैं। इससे मालिकों को तमाम ज़िम्मेदारियों से छुटकारा मिल जाता है। ये ठेकेदार जब चाहे दिवालिया हो सकते हैं या कम्पनी बन्द कर सकते हैं और फिर नये नाम से अगले दिन ही नयी कम्पनी खोल सकते हैं। इस तरह वे मज़दूरों के प्रति देनदारियों से बच जाते हैं।

इन सबके खिलाफ मज़दूर लड़ रहे हैं। मार्च में शाह आलम शहर में मज़दूरों ने प्रदर्शन किये और अपनी माँगें रखीं। मार्च में ही रेक्रौन मलेशिया लिमिटेड के 4,000 प्रवासी मज़दूरों ने अपने देश के दूतावासों और मलेशियाई श्रम विभाग की तरफ से कोई कार्रवाई न होते देख संघर्ष करने का फैसला किया। दुनिया की सबसे बड़ी पोलियस्टर और टेक्सटाइल कम्पनियों में से एक, रेक्रौन कम्पनी भारत की रिलायंस कम्पनी का ही हिस्सा है और वेतनों में बढ़ोत्तरी का विरोध करने में यह सबसे आगे थी। एक मज़दूर ने अपना गुस्सा जाहिर करते हुए कहा, "जो धागा हम बुनते हैं उसकी कीमत 5 वर्ष पहले 2.5 रिंगिट थी जो अब बढकर 7.5 रिंगिट हो गई है, उनके मुनाफे तीन गुना बढ़ गये हैं जबकि हमारी मज़दूरी में एक पैसे का इजाफा नहीं हुआ।"

इसमें कोई शक नहीं कि प्रवासी मज़दूरों को ज़्यादा लूटा जाता है और इनमें भी घरेलू काम करने वाली औरत मज़दूरों को तो और भी ज़्यादा क्योंकि उनको आर्थिक शोषण के साथ-साथ शारीरिक शोषण का भी सामना करना पड़ता है। प्रवासी मज़दूरों को उनकी क़ानूनी मजबूरी के चलते लूटना और अधिकारों से वंचित रखना अधिक आसान होता है। साथ ही उनकी स्थानीय मज़दूरों के साथ एकता बनने को भी रोका जाता है। लेकिन इस लूट के खिलाफ संघर्ष स्थानीय या प्रवासी या औरत मज़दूर अलग-अलग नहीं कर सकते। यह संघर्ष समूचे संसार के मज़दूरों का संघर्ष है और इसका दायरा भी व्यापक ही होगा। स्थानीय और प्रवासी मज़दूरों को एकजुट करके, उनको इस निर्णायक संघर्ष के लिए तैयार करना होगा। इसी में ही समूचे मज़दूर वर्ग की मुक्ति है।

– मानव

कहानी

येह शेङ ताओ

नंगा राजा

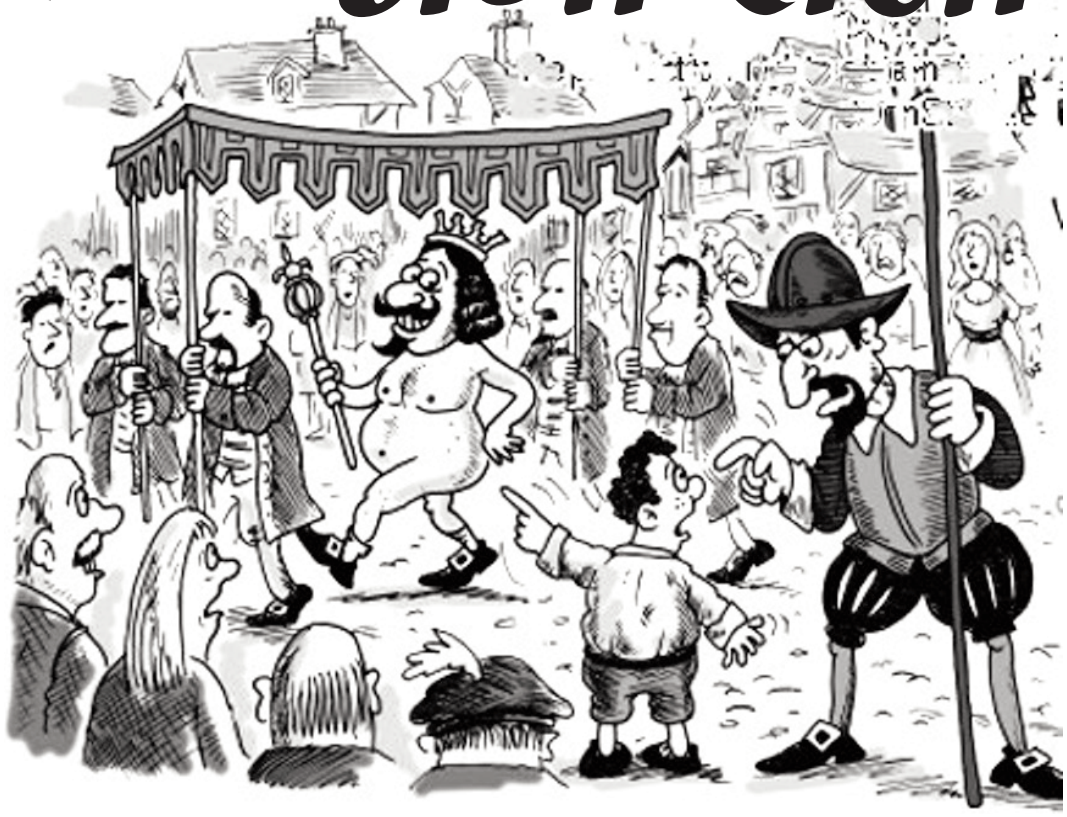

बहुत से लोगों ने नये-नये कपड़े पहनने के शौक़ीन उस राजा के बारे में हैन्स एण्डर्सन की कहानी पढ़ी होगी जिसे एक बार दो ठगों ने उल्लू बना दिया था। उन ठगों ने यह दावा किया कि वे राजा के लिए ऐसी सुन्दर पोशाक़ तैयार करेंगे जैसी कि कोई सपने में भी नहीं सोच सकता। पर सबसे बड़ी ख़ूबी उसमें यह होगी कि वह पोशाक़ किसी मूर्ख व्यक्ति या अपने पद के लिए अयोग्य व्यक्ति को दिखायी नहीं देगी। राजा ने तुरन्त अपने लिए ऐसी पोशाक़ बनाने को आदेश दे दिया और दोनों ठग बुनने, काटने और सिलने का अभिनय करने में जुट गये। राजा ने कई बार अपने मन्त्रियों को काम की रफ़्तार देखने के लिए भेजा और हर बार उन्होंने उसे बताया कि वे अपनी आँखों से नये वस्त्रों को देखकर आ रहे हैं और वे वाकई बेहद ख़ूबसूरत हैं। दरअसल, राजा के मन्त्रियों ने कुछ भी नहीं देखा था, पर वे मूर्ख कहलाना नहीं चाहते थे और उससे भी बढ़कर अपने पदों के लिए अयोग्य घोषित किया जाना तो नहीं ही चाहते थे।

राजा ने तय किया कि जिस दिन नयी पोशाक़ तैयार हो जायेगी, उस दिन एक भव्य समारोह होगा और राजा नयी पोशाक़ पहनकर नगर में निकलेगा। राज्यभर में इसकी मुनादी करवा दी गयी।

जब वह दिन आया तो ठगों ने राजा के सारे कपड़े उतरवा दिये। फिर वे देर तक उसे नये परिधान में सजाने-धजाने का अभिनय करते रहे। राजा के दरबारियों और नौकर-चाकरों ने एक स्वर में उसकी तारीफ़ों के पुल बाँधने शुरू कर दिये क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि वे मूर्ख कहलायें या अपने पदों के लिए अयोग्य घोषित कर दिये जायें। राजा ने सन्तुष्ट भाव से सर हिलाया और नंगधड़ंग बाहर चल पड़ा।

रास्ते के दोनों तरफ़ खड़े लोग भी मूर्ख कहलाना नहीं चाहते थे। वे सब के सब राजा की नयी पोशाक़ की इस तरह से प्रशंसा कर रहे थे जैसे वे उसे साफ़-साफ़ देख रहे हों। लेकिन तभी एक बच्चा बड़ी मासूमियत से बोल पड़ा, "अरे, उस आदमी ने तो कुछ पहना ही नहीं है!"

भीड़ के कानों में यह बात पड़ते ही चारों तरफ़ फैल गयी और जल्दी ही हर आदमी हँस रहा था और चिल्ला रहा था: "अरे सच! राजा के बदन पर एक सूत भी नहीं है।" अचानक राजा की समझ में आया कि उसे धोखा दिया गया है। लेकिन अब तो खेल शुरू हो चुका था और उसे बीच में रोकने का मतलब होता, और बेइज़्ज़ती। उसने तय किया कि वह इसे जारी रखेगा और सीना फुलाकर आगे चल दिया।

इसके बाद क्या हुआ? हैन्स एण्डर्सन ने इसके बारे में कुछ नहीं कहा है, लेकिन दरअसल इस कहानी में और भी बहुत कुछ हुआ था।

राजा अपने भव्य जुलूस के साथ आगे चलता रहा, मानो कुछ हुआ ही न हो। और वह इतना अकड़कर चल रहा था कि उसके कन्धे और रीढ़ की हड्डी तक दुखने लगे। उसकी अदृश्य पोशाक़ के पिछले भाग को उठाकर चलने का अभिनय कर रहे सेवक बड़ी मुश्किल से अपने होंठ चबा-चबाकर हँसी रोक रहे थे क्योंकि वे मूर्ख कहलाना नहीं चाहते थे। अंगरक्षक अपनी निगाहें जमीन पर गड़ाये हुए चल रहे थे क्योंकि अगर किसी एक की भी नज़र अपने साथी से मिल जाती तो उसके मुँह से जरूर हँसी फूट पड़ती।

लेकिन जनता तो ज़्यादा स्पष्टवादी होती है। उसे अपने होंठ काटने और निगाहें ज़मीन पर गड़ाये रखने की कोई वजह समझ में नहीं आयी। इसलिए जब एक बार यह नंगी सच्चाई उजागर हो गयी कि राजा कुछ नहीं पहने है, तो वे ज़ोर-ज़ोर से ठहाके लगाकर हँसने लगे।

"अच्छा राजा है यह तो, नंगधड़ंग चला जा रहा है," एक ने खिलखिलाते हुए कहा।

"ज़रूर इसकी अकल घास चरने चली गयी है," दूसरे ने कहकहा लगाया।

"थुलथुल, बदसूरत कीड़ा," किसी ने फब्ती कसी।

"उसके कन्धे और टांगें देखे, जैसे पंख नुची हुई मुर्गी," चौथे आदमी ने ताना मारा।

इन फ़ब्तियों से राजा का गुस्सा भड़क उठा। उसने जुलूस रोक दिया और अपने मन्त्रियों को डपटा, "सुना तुमने, इन मूर्खों और देशद्रोहियों की जुबान बहुत चलने लगी है। तुम लोग रोकते क्यों नहीं उन्हें? मेरे नये वस्त्र बहुत ठाठदार हैं और इन्हें पहनने से मेरी राजसी आनबान बढ़ती है। तुम लोग खुद यह बात कह रहे थे। आज से मैं सिर्फ़ यही कपड़े पहनूँगा और दूसरा कुछ नहीं पहनूँगा। जो कोई यह कहने की हिम्मत करता है कि मैं नंगा हूँ, वह दुष्ट और गद्दार है। उसे फ़ौरन गिरफ़्तार करके मौत के घाट उतार दिया जाये। यह एक नया क़ानून है। इसकी घोषणा फ़ौरन कर दी जाये।"

राजा के मन्त्री तुरन्त भागदौड़ करने लगे। नगाड़े पीटकर प्रजा को इकट्ठा किया गया और मन्त्रियों ने पूरी ताक़त से चिल्ला-चिल्लाकर इस नये क़ानून की घोषणा कर दी। हँसना और फब्तियाँ कसना बन्द हो गया और राजा ने सन्तुष्ट होकर जुलूस को आगे बढ़ने का आदेश दिया।

लेकिन वह अभी थोड़ी ही दूर गया था कि ठहाकों और फ़ब्तियों की आवाजें उसके कानों में पटाखों की तरह गूँजने लगी।

"उसके बदन पर एक सूत भी नहीं है।"

"कैसा घिनौना पिलपिला बदन है।"

"उसकी तोंद देखो, जैसे सड़ा हुआ कद्दू!"

"उसके नये कपड़े वाक़ई कमाल के हैं!" हर ताने के साथ ज़ोरदार कहकहे लगते थे।

राजा फिर भड़क गया। उसने खा जाने वाली नज़रों से मन्त्रियों को घूरा और चिंघाड़ा, "इसे सुना तुमने!"

"हाँ महाराज, हमने सुना इसे," काँपते हुए मन्त्रियों ने जवाब दिया।

"क्या तुम भूल गये अभी-अभी मैंने क्या नया क़ानून बनाया है?"

राजा की बात पूरी होने का इन्तज़ार किये बिना मन्त्रियों ने सिपाहियों को आदेश दिया कि उन सबको गिरफ़्तार कर लायें जो हँस रहे थे या फ़ब्तियाँ कस रहे थे।

चारों तरफ़ भगदड़ मच गयी। सिपाही इधर से उधर दौड़ने लगे और भागने की कोशिश कर रहे लोगों को अपने बल्लमों से रोकने लगे। बहुत से लोग गिर पड़े, कुछ दूसरों के ऊपर से छलाँग मारकर भागने में सफल हो गये। फ़ब्तियों और हँसी की जगह चीख़ें और सिसकियाँ सुनाई पड़ने लगीं। क़रीब पचास लोग पकड़े गये और राजा ने उनको वहीं मार डालने का हुक्म दिया ताकि प्रजा समझ जाये कि उसके मुँह से निकली बात लौह क़ानून है और कोई उसका मज़ाक नहीं उड़ा सकता।

उस दिन के बाद से राजा ने कोई कपड़ा नहीं पहना। अन्त:पुर से लेकर दरबार तक, हर जगह वह नंगा ही जाता था और बीच-बीच में अपनी पोशाक़ की सिलवटें ठीक करने का अभिनय करता रहता था। उसकी रानियाँ और दरबारी शुरू-शुरू में उसे अपने बदसूरत पिलपिले शरीर के साथ घूमते और ऐसी हरक़तें करते देखकर मज़ा लेते थे, पर धीरे-धीरे वे ऐसा दिखावा करना सीख गये जैसे कोई बात ही न हो। वे इसके आदी हो गये और अब वे राजा को ऐसे ही देखते थे जैसे वह पूरी तरह कपड़े पहने हुए हो। रानियाँ और दरबारीगण इसके सिवा कुछ कर भी नहीं सकते थे, अन्यथा वे अपने पदों से और यहाँ तक कि अपनी जान से भी हाथ धो बैठते। लेकिन इतनी जीतोड़ कोशिशों के बावजूद एक पल की गफलत भी उनके सर्वनाश का कारण बन सकती थी।

एक दिन राजा की प्रिय रानी उसे खुश करने के लिए अपने हाथों से सुरापान करा रही थी। उसने लाल शराब का एक प्याला भरकर राजा के होठों से लगाया और खूब मीठे स्वर में बोली, "इसे पीजिये और ईश्वर करे कि आप हमेशा जीवित रहें।"

राजा इतना खुश हुआ कि उसने एक साँस में प्याला खाली कर दिया। लेकिन इसने शायद कुछ ज़्यादा ही जल्दी कर दी क्योंकि उसे खाँसी आ गयी और शराब उसकी छाती पर बह चली।

"अरे आपकी छाती पर धब्बा लग गया है," रानी बोल पड़ी।

"क्या, मेरी छाती पर!"

अपनी भूल का अनुभव करते ही राजा की प्रिय रानी का चेहरा पीला पड़ गया। "नहीं, आपकी छाती पर नहीं," उसने काँपते हुए स्वर में अपनी भूल सुधरी, "आपकी पोशाक़ पर धब्बा लग गया है।"

"तुमने कहा कि मेरी छाती पर धब्बा लग गया है। यह वही बात हुई कि मैं कुछ भी नहीं पहने हूँ। बेवकूफ़ कहीं की! तू दग़ाबाज़ है और तूने मेरा क़ानून तोड़ा है!" इतना कहने के साथ ही राजा चिल्लाया, "ले जाओ इसे जल्लाद के पास।" और उसके सिपाही रानी को घसीट ले गये।

राजा का एक बहुत विद्वान मन्त्री भी राजा की सनक का शिकार हुआ। हालाँकि उसने भी सबकुछ अनदेखा करने की आदत डाल ली थी, लेकिन उसे भरे दरबार में एक ऐसे आदमी को राजा कहने में शर्म आती थी, जो गद्दी पर बिलकुल नंगा बैठता था। मन ही मन वह उसे 'गंजा बन्दर' कहता था। वह डरता था कि यदि किसी दिन उसके मुँह से असावधानीवश कोई बात निकल गयी या वह किसी ग़लत मौक़े पर हँस पड़ा तो उसकी बरबादी निश्चित है। इसलिए उसने अपनी बूढ़ी माँ को देखने घर जाने के बहाने से राजा से छुट्टी माँगी।

राजा ने कहा कि, "मैं किसी मातृभक्त बेटे की प्रार्थना भला कैसे ठुकरा सकता हूँ।" और उसे जाने की छुट्टी दे दी। मन्त्री को उस समय ऐसा महसूस हो रहा था जैसे उसे मोटी-मोटी ज़ंजीरों से मुक्ति मिल गयी हो। उसने राहत की साँस ली और उसके मुँह से धीरे से निकल गया, "भगवान का लाख-लाख शुक्र है, अब मुझे उस नंगे राजा की ओर देखना नहीं पड़ेगा।"

राजा के कान में भनक पड़ी तो उसने अपने सेवकों से पूछा, "क्या कहा उसने?" सेवक हड़बड़ी में कोई बात बना नहीं पाये और उन्होंने उसे पूरी बात बता दी।

"अच्छा तो तुमने इसलिए छुट्टी माँगी थी क्योंकि तुम मुझे देखना बरदाश्त नहीं कर सकते," राजा चिल्लाया। "तुमने मेरा क़ानून तोड़ा है। अब देखो मैं ऐसा इन्तज़ाम करता हूँ कि तुम घर पहुँच ही न पाओ।" इसके बाद उसने अपने जल्लादों को हुक्म दिया कि वे मन्त्री को ले जायें और उसकी गरदन उड़ा दें।

इन घटनाओं के बाद अन्त:पुर और दरबार में हर आदमी और ज़्यादा चौकन्ना हो गया। लेकिन आम जनता ने तो रानियों और दरबारियों जैसी चालाकी नहीं सीखी थी। जब भी राजा लोगों के सामने आता था और वे उसके ढोंग को और उसके भद्दे शरीर को देखते थे, वे हँसी रोक नहीं पाते थे। इसके बाद खूनी हत्याओं का सिलसिला शुरू हो जाता था। एक दिन जब राजा मन्दिर में यज्ञ करने के लिए गया तो उसके सिपाहियों ने तीन सौ लोगों को जल्लाद के हवाले किया। जिस दिन वह अपने सैनिकों का मुआयना करने निकला उस दिन पाँच सौ लोग मौत के घाट उतारे गये, और एक दिन जब वह राज्य के शाही दौरे पर निकला तो राज्य भर में हजारों लोग मारे गये।

एक दयालु बूढ़े मन्त्री ने सोचा कि राजा हद से बाहर जा रहा है और अब यह सब बन्द होना चाहिए। लेकिन राजा यह कभी नहीं मानता कि वह ग़लत है। उससे उसकी ग़लती बताना अपने गले में फन्दा डालने के समान था। बूढ़े मन्त्री ने सोचा कि अगर किसी तरह से राजा को फिर से कपड़े पहना दिये जायें तो जनता की हँसी और फ़ब्तियाँ रुक जायेंगी और लोगों की जान बचेगी। कई रातों तक जाग-जागकर वह सोचता रहा कि क्या करे जिससे साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे।

आख़िर उसे एक योजना सूझी और वह राजा के पास गया। उसने

(पेज 15 पर जारी)

नंगा राजा

(पेज 14 से आगे)

कहा, "मेरे मालिक! आपके एक वफ़ादार सेवक के नाते मैं आपको एक सुझाव देना चाहता हूँ। आप हमेशा नये-नये कपड़ों के शौक़ीन रहे हैं क्योंकि उनसे आपकी शानशौक़त को चार चाँद लग जाते हैं। लेकिन इधर बहुत दिनों से आप राज्य के मामलों में इतने व्यस्त रहे हैं कि आपको नये कपड़ों का ध्यान ही नहीं रहा है। जो पोशाक़ आपने पहनी हुई है, उसका रंग फीका पड़ रहा है। आप अपने दर्जियों को आदेश दीजिये कि वे आपके लिए एक नयी और शानदार पोशाक़ बनाकर तैयार करें।

"क्या कहा, मेरी पोशाक़ का रंग फीका पड़ रहा है?" उसने अपने शरीर पर हाथ फिराते हुए कहा। "बकवास! ये जादुई पोशाक़ है। इसका रंग कभी फीका नहीं पड़ सकता। तुमने सुना नहीं, मैंने कहा था कि अब मैं इसके सिवा और कुछ नहीं पहनूँगा। तुम चाहते हो कि मैं इसे उतार दूँ, ताकि मैं भद्दा दिखूँ! चलो, तुम्हारी उम्र और तुम्हारी पिछली सेवाओं का ख़्याल करके तुम्हारी जान बख़्श दे रहा हूँ, लेकिन तुम्हारी बाक़ी ज़िन्दगी अब जेल में कटेगी।"

सैकड़ों निर्दोषों को प्राणदण्ड देने का क्रम चलता रहा। उल्टे, लोगों की हँसी बन्द न होने से राजा एकदम तुनक गया और उसने और भी ज़्यादा कड़ा क़ानून बना दिया। इस बार उसने फ़रमान जारी कर दिया कि जब राजा सड़क पर निकले उस वक़्त कहीं से किसी आदमी की किसी भी तरह की आवाज़ नहीं आनी चाहिये। अगर किसी ने कोई आवाज़ निकाली तो उसे हाथी से कुचलवा दिया जायेगा।

इस क़ानून की घोषणा के बाद राज्यभर के गणमान्य नागरिक सोचने लगे कि अब तो राजा अति कर रहा है। ठीक है कि राजा की हँसी उड़ाना अच्छी बात नहीं है, लेकिन दूसरी चीज़ों के बारे में बात करने पर क्यों प्राणदण्ड दिया जाये? वे सब जुलूस बनाकर राजा के यहाँ गये और राजमहल के बाहर घुटनों के बल झुककर बोलो कि वे राजा को एक अर्ज़ी देने आये हैं।

घबराया हुआ राजा बाहर आया और गरजकर बोला, "तुम लोग यहाँ क्या करने आये हो? बग़ावत करना चाहते हो?"

गणमान्य नागरिकों ने अपने सर उठाने की जुर्रत किये बिना जल्दी से जवाब दिया, "नहीं, नहीं महाराज, आप हमें ग़लत समझ बैठे हैं। हम ऐसा कुछ नहीं करने जा रहे हैं।" राहत महसूस करते हुए राजा ने शान से अपनी अदृश्य पोशाक़ की सलवटें ठीक कीं और पहले से भी ज़्यादा कड़ी आवाज में बोला, "फिर तुम लोग इतनी भीड़ बनाकर यहाँ क्यों आये हो?"

"हम महाराज से प्रार्थना करने आये हैं कि हमारी हँसने-बोलने की आज़ादी लौटा दी जाये। जो आप पर कीचड़ उछालते हैं और हँसी उड़ाते हैं, वे दुष्ट लोग हैं और उनको ज़रूर मार डालना चाहिए। मगर हम सब लोग राजभक्त, ईमानदार नागरिक हैं, हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप अपना नया क़ानून वापस ले लें।"

"आज़ादी? और तुम लोगों को? अगर तुम आज़ादी चाहते हो तो मेरी प्रजा नहीं रह सकते। अगर तुम मेरी प्रजा रहना चाहते हो तो मेरे क़ानूनों को मानना पड़ेगा। और मेरे क़ानून लोहे जैसे सख़्त हैं। उन्हें मैं वापस ले लूँ? कभी नहीं!" - इतना कहने के साथ ही राजा पलटा और अपने महल में चला गया।

नागरिकों को इससे आगे कहने की हिम्मत नहीं हुई। डरते-डरते उन्होंने धीरे से सर उठाया और देखा कि राजा जा चुका है। अब वे वापस

घर लौटने के सिवा कुछ नहीं कर सकते थे। इसके बाद से लोगों ने एक नया तरीक़ा अपना लिया - जब राजा बाहर आता था, तब वे बन्द दरवाजों के पीछे अपने घरों में ही क़ैद रहते थे, सड़कों पर झाँकते तक नहीं थे।

एक दिन राजा अपने मन्त्रियों और अंगरक्षकों के साथ महल से बाहर अपनी आरामगाह के लिए चला। सारी सड़कें सूनी पड़ी थीं और दोनों तरफ़ घरों के दरवाजे बन्द थे। जो अकेली आवाज़ उन्हें सुनायी दे रही थी वह उनके अपने पैरों की पदचाप थी, जैसे रात के सन्नाटे में कोई सेना मार्च कर रही हो।

तभी अचानक राजा थम गया और कान खड़े करते हुए अपने मन्त्रियों पर गरजा, "सुन रहे हो ये आवाज़?" मन्त्रियों ने भी सुनने के लिए कान लगा दिये।

"हाँ, एक बच्चा रो रहा है," एक बोला।

"एक औरत गा रही है," दूसरे ने बताया।

"वह आदमी ज़रूर नशे में धुत्त होगा, बदमाश कहीं का, खिलखिलाकर हँस रहा है," तीसरे मन्त्री ने कहा।

अपने मन्त्रियों को सारा मामला इतना हल्का बनाते देखकर राजा आगबबूला हो गया। "क्या तुम लोग मेरा नया क़ानून भूल गये हो?" - वह पूरी ताक़त से चिंग्घाड़ा। गुस्से के मारे उसकी आँखें बाहर निकली पड़ रही थीं और उसका थुलथुल सीना धौंकनी की तरह चल रहा था।

मन्त्रियों ने तुरन्त सिपाहियों को हुक्म दिया कि घरों में घुस जायें और जिस किसी ने भी कोई भी आवाज़ निकाली हो - चाहे वह बूढ़ा, जवान, मर्द, औरत कोई भी हो - उसे पकड़ लायें और जल्लाद के हवाले कर दें।

लेकिन तभी ऐसी घटना घटी जिसकी राजा ने सपने में भी आशा नहीं की थी। जब सिपाहियों ने घरों के दरवाज़े तोड़े तो औरतों, पुरुषों और बच्चों का हुजूम बाहर उमड़ पड़ा। वे राजा की ओर झपटे और हाथों को बाज़ के पंजों की तरह ताने हुए उसके शरीर पर टूट पड़े। वे चिल्ला रहे थे, "नोच डालो! इसकी ख़ूनी पोशाक़ को नोच डालो!"

आदमियों ने राजा की बाँहें पकड़कर मरोड़ दीं। औरतें उसकी छाती और पीठ पर मुक्के बरसा रही थीं। दो छोटे बच्चे उसकी बाँहों के नीचे और पेट में गुदगुदी मचा रहे थे। चारों तरफ़ से घिर चुके राजा को भागने का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। उसने अपना सिर घुटनों में छिपा लिया और गिलहरी की तरह गुड़ीमुड़ी हो गया, लेकिन सब बेकार। उसकी बगलों में मच रही भयानक गुदगुदी और उसके पूरे बदन में हो रही जलन उसकी बरदाश्त के बाहर हो रहे थे। वह किसी भी तरह इस मुसीबत से छुटकारा नहीं पा सकता था। उसने अपना सिर कंधें में दुबका लिया और उसके मुँह से क्रोध, भय और हैरानी की मिलीजुली ध्वनियाँ निकलने लगीं। उसके भृकुटि तानने और उन्हें डराने-धमकाने के प्रयासों को देखकर लोगों का हँसी के मारे बुरा हाल हो गया।

लोगों के घरों से निकलते हुए सिपाहियों ने देखा कि राजा कितना मज़ाकिया लग रहा था - जैसे क्रुद्ध बर्रों से घिरा बन्दर - तो वे भूल गये कि उन्हें उसके प्रति सम्मान दिखाना चाहिए और वे भी सबके साथ हँसी में शामिल हो गये। इसे देखकर पहले तो मन्त्रीगण डर गये, लेकिन फिर उन्होंने कनखी से राजा की ओर देखा और वे सब भी ठहाका मारकर हँस पड़े।

हँसते-हँसते दोहरे हुए जाते मन्त्रियों के दिमाग में अचानक यह बात आयी कि वे राजा का क़ानून तोड़ रहे हैं और उन्हें गिरफ़्तार किया जा सकता है। इसके पहले जब जनता राजा की खिल्ली उड़ाती थी तो मन्त्री ही उसे दण्ड दिया करते थे और अब वे खुद उस पर हँस रहे थे। तभी उन्होंने उसकी तरफ़ फिर ध्यान से देखा। उसके पूरे शरीर पर काले-काले चकत्ते पड़े हुए थे और वह गठरी बना हुआ ऐसा लग रहा था जैसे बरसात में भीगा हुआ मुर्ग़ी का बच्चा। उसे देखते ही हँसी छूट रही थी।

"क्या यह स्वाभाविक नहीं है कि लोग मज़ाकिया चीज़ों पर हँसें? लेकिन राजा ने तो क़ानून बनाकर लोगों के हँसने पर पाबन्दी लगा दी थी। क्या बेहूदा क़ानून है!" और मन्त्री भी लोगों के साथ मिलकर चिल्लाने लगे "नोच डालो! इसके झूठे कपड़ों को नोच डालो!"

जब राजा ने देखा कि उसके मन्त्री और सिपाही भी जनता से मिल गये हैं और अब वे उससे जरा भी खौफ़ नहीं खा रहे हैं तो उसे ऐसा धक्का लगा जैसे किसी ने उसके सिर पर भारी हथौड़ा दे मारा हो, और वह चारों खाने चित्त, धरती पर जा गिरा।

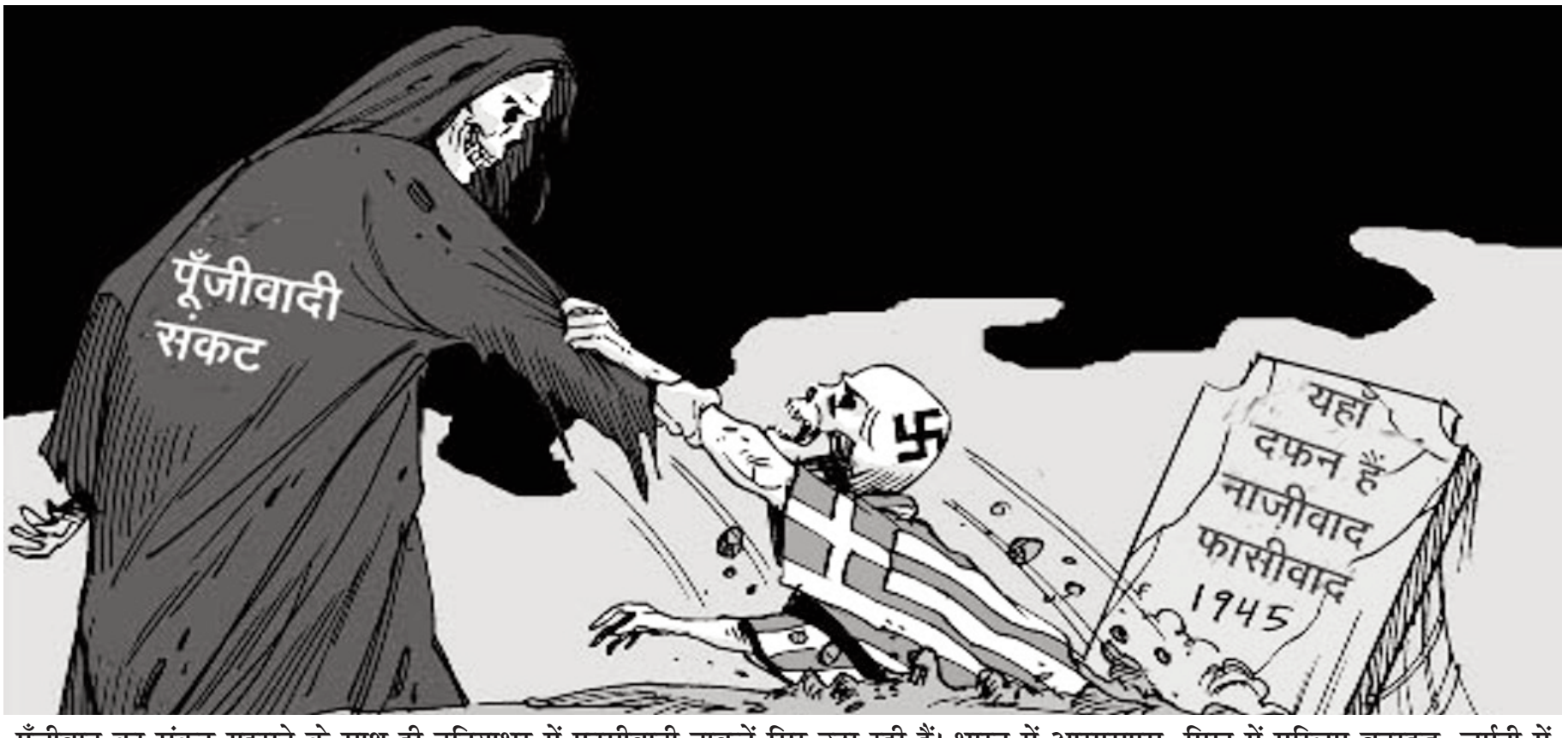

पूँजीवाद का संकट गहराने के साथ ही दुनियाभर में फ़ासीवादी ताक़तें सिर उठा रही हैं। भारत में आरएसएस, मिस्र में मुस्लिम ब्रदरहुड, जर्मनी में नव-नाज़ी गुट, फ्रांस में नेशनल फ्रंट, इटली में मुसोलिनी-भक्त नव-फ़ासीवादी गुट, ग्रीस में गोल्डन डॉन... फ़ेहरिस्त लम्बी है...

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषित डाकघर : आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि : दिनांक 20 प्रत्येक माह

रिलायंस की गैस का गोरखधन्धा

"अच्छे दिनों" की शुरुआत हो चुकी है। अब ये दीगर बात है कि किसके लिए। पूँजीपतियों के खेमे में जश्न का माहौल है जबकि जनता को अपने सबसे बुरे दिन देखने को तैयार हो जाना चाहिए। तमाम लोकलुभावन जुमलों और विकास-विकास की रट लगाते हुए सत्ता पर काबिज हुई नरेन्द्र मोदी सरकार की असलियत इतनी जल्दी सामने आने लगेगी, इसका अन्दाज़ा नहीं था। सत्ता में आने के साथ ही इसने सबसे पहले रक्षा क्षेत्र में विदेशी निवेश को सौ फ़ीसदी मंज़ूरी देकर अपने कथित विकास का परिचय दे दिया है। अपने चहेते अम्बानी बन्धुओं के हित में अब प्राकृतिक गैस की क़ीमत बढ़ाकर दोगुनी करने का फ़ैसला भी हो गया है जिसका ख़ामियाज़ा आने वाले दिनों में आम जनता को भुगतना पड़ेगा। महँगाई की मार से पहले से ही कराह रही आम जनता को अब खाद, बिजली, गैस, किरासन, अनाज सहित तमाम वस्तुओं की बहुत ज़्यादा क़ीमत अदा करनी पड़ेगी। सरकार किस तरीक़े से सारे नियमों-कायदों को ताक पर रखकर रिलायंस कम्पनी को फ़ायदा पहुँचा रही है, इसकी बानगी अम्बानी को केजी-डी 6 बेसिन में दिये गये गैस के कुओं और उसके मनमाफ़िक गैस की क़ीमतें तय करने की प्रक्रिया में मिलती है।

दरअसल, केजी का तात्पर्य कृष्णा गोदावरी बेसिन से है, जो आन्ध्र प्रदेश के तटीय क्षेत्र में कृष्णा और गोदावरी नदी के किनारे करीब 50,000 वर्ग किलोमीटर में फैला है। इसमें से 7,645 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र को धीरूभाई-6 या डी-6 कहते हैं, और यहीं पर देश के सबसे बड़े गैस के भण्डार का पता लगा।

यह कहानी शुरू होती है करीब ढाई दशक पहले देश में नवउदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को लागू करने के साथ। 1991 में भारत सरकार ने भारत में निजी कम्पनियों और विदेशी कम्पनियों के लिए हाइड्रोकार्बन की खोज और उत्पादन करने का रास्ता खोला। इसके तहत शुरुआत में अलग-अलग कम्पनियों को तेल और गैस के उत्पादन के लिए छोटे और मँझोले ब्लॉक दिये गये। 1999 में भारत सरकार खोज और लाइसेंसिंग की नयी नीति लायी, जिसके तहत अलग-अलग कम्पनियों को दिये गये सारे छोटे-छोटे ब्लॉकों को ख़त्म करके एक बड़ा ब्लॉक, जिसे धीरूभाई-6 (डी-6) कहा गया, रिलायंस कम्पनी को दे दिया गया। रिलायंस के हक़ में सरकारी नीति बदलने का यह कोई पहला मामला नहीं था। इससे पहले भी अनेक बार उसे फ़ायदा पहुँचाने के लिए सरकारी नीतियाँ बदल दी जाती रही हैं।

गैस की खोज और फिर गैस निकालकर बेचने का ठेका तो रिलायंस को दे दिया गया, लेकिन क्या सरकार का उस पर नियन्त्रण रहा? कोई भी प्राकृतिक सम्पदा देश की जनता की होती है। इसीलिए सरकार तेल और गैस की खोज और इसके उत्पादन पर निगरानी रखती है। किसी प्राकृतिक सम्पदा को निजी कम्पनी कैसे निकालती और बेचती है, इसकी निगरानी करने के लिए सरकार उत्पादन में साझेदारी के लिए निजी कम्पनियों के साथ समझौता करती है। इसे प्रोडक्शन शेयरिंग कॉण्ट्रैक्ट (पीएससी) कहते हैं। इस अनुबन्ध में ख़रीदार और बेचने वाली पार्टी के लिए नियम-क़ानून तय किये गये हैं। इसमें यह बताया गया है कि प्राकृतिक सम्पदा की खोज करने से लेकर उस सम्पदा को निकालकर बेचने तक कौन-कौन सी प्रक्रियाओं का पालन करना है और मुनाफ़े का बँटवारा कैसे होगा। सरकार का हाइड्रोकार्बन महानिदेशालय इस बात की निगरानी करता है कि अनुबन्ध का उल्लंघन न हो। इसी तरह का एक पीएससी भारत सरकार और रिलायंस तथा रिलायंस की ही एक पार्टनर कम्पनी 'निको रिसोर्सेज़' (जिसका हेडक्वार्टर कनाडा में है) के बीच किया गया। इसमें निको का हिस्सा 10 प्रतिशत था।

केजी बेसिन से उत्पादन शुरू होने से पहले ही मुकेश अम्बानी और अनिल अम्बानी के बीच रिलायंस कम्पनी का बँटवारा हो गया, जिसमें गैस का सारा व्यापार मुकेश अम्बानी के हिस्से आ गया। इससे पहले जून 2004 में भारत सरकार के उपक्रम एनटीपीसी ने अपने दो पावर प्लाण्ट (कवास और गन्धार) को गैस सप्लाई करने के लिए टेण्डर निकाला था। इसमें रिलायंस ने एनटीपीसी को 17 साल तक प्रति यूनिट 2.34 डॉलर के हिसाब से 132 ट्रिलियन यूनिट गैस देने का ठेका लिया। इसी ठेके के आधार पर 2005 में बँटवारे के समय अनिल अम्बानी ने गैस सम्पदा का एक बड़ा हिस्सा रिलायंस नेचुरल रिसोर्सेज लिमिटेड (आरएनआरएल) के नाम से अपने पास यह कहकर रख लिया कि एनटीपीसी को 17 साल तक गैस देने का ठेका उनके पास है, इसीलिए इस गैस को निकालने के लिए उन्हें भी गैस का कुआँ चाहिए। कहने के लिए पीएससी कॉण्ट्रैक्ट का पहला वाक्य ही है कि भारतीय संविधान के तहत सारी खनिज गैस और तेल भारत की सम्पदा है, मगर दोनों भाइयों ने इसका आपस में बँटवारा कर लिया। इस बात को सालों तक दबा के रखा गया, जबकि सुप्रीम कोर्ट ने एक आदेश में साफ़ कहा है कि "भारत सरकार गैस के उत्पादन से लेकर गैस के उपभोक्ता के पास पहुँचने तक उसकी मालिक है। कम्पनियों को अपने मतभेदों का समाधान और बँटवारा सरकार की नीति के तहत ही करना चाहिए।"

देश की सम्पदा खुलेआम लूटी जा रही थी और किसी भी मन्त्रालय या मन्त्री ने इस गैस के बँटवारे पर कुछ न कहा। सरकार आँख मूँदे रही। तत्कालीन प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह ने बस यह कहकर अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ लिया कि दोनों भाई देश के हितों को ध्यान में रखते हुए झगड़ा न करें और सभी मतभेदों को जल्दी सुलझायें।

अनिल अम्बानी ने एनटीपीसी को गैस सप्लाई के ठेके के नाम पर गैस के भण्डार का बहुत बड़ा हिस्सा अपने नाम कर लिया, लेकिन उस पर क़ब्ज़ा होते ही रिलायंस इण्डस्ट्रीज ने एनटीपीसी के उस ठेके पर हस्ताक्षर करने से ही इंकार कर दिया। उसने एनटीपीसी को 2.34 डॉलर की दर से गैस देने से साफ़ मना कर दिया। एनटीपीसी ने रिलायंस के ख़िलाफ़ दिसम्बर 2005 में मुम्बई हाईकोर्ट में याचिका दाख़िल की, लेकिन 9 साल बाद भी वह मामला लटका हुआ है। सरकार की दिलचस्पी अपने सार्वजनिक उपक्रम एनटीपीसी के हितों से ज़्यादा रिलायंस के हितों की रक्षा करने में रही है।

वर्ष 2007 में सरकार ने इस मामले को मन्त्रियों के समूह के सुपुर्द कर दिया, जिसके अध्यक्ष उस समय के वित्त मन्त्री प्रणव मुखर्जी थे। मन्त्री समूह ने 2.34 डॉलर की दर को बढ़ाकर 4.2 डॉलर कर देने का फ़ैसला किया। इस समय तक केजी बेसिन से गैस निकालने का काम अभी बन्द ही था। लेकिन जैसे ही दाम 4.2 डॉलर किया गया, रिलायंस ने तुरन्त बयान दिया कि सरकार द्वारा तय किये गये दाम से कम में किसी को गैस नहीं दी जायेगी। दरअसल 4.2 डॉलर का दाम भी रिलायंस के ही एक फ़ार्मूले से तय किया गया था। जो कम्पनियाँ रिलायंस से गैस लेना चाहती थीं, उनसे रिलायंस ने 4.54 डॉलर और 4.75 डॉलर के बीच एक दाम बताने को कहा। इसके बाद रिलायंस ने सरकार से दाम 4.59 डॉलर करने की माँग की, जिसे बाद में उसने कम करके 4.3 डॉलर कर दिया। प्रणव मुखर्जी ने इसी में मामूली कटौती करके 4.2 डॉलर कर दिया, ताकि लोगों को दिखाया जा सके कि अन्त में सरकार की ही चली!

इन तमाम क़दमों पर भारत सरकार के बिजली एवं ऊर्जा विभाग के प्रमुख सलाहकार सूर्या पी. सेठी ने सवाल उठाया, जिसे नज़रन्दाज़ कर दिया गया। सेठी ने कहा कि जब दुनिया में कहीं भी गैस की उत्पादन लागत 1.43 डॉलर से ज़्यादा नहीं है तो रिलायंस को इतनी ऊँची दर क्यों दी जा रही है। इतना ही नहीं, 2011 में नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक (कैग) की रिपोर्ट के अनुसार रिलायंस बिना कोई कुआँ खोदे ही पेट्रोलियम मिलने के दावे करती रही। रिलायंस को पता ही नहीं था कि उसके पास कितने कुओं में कितनी गैस है। दूसरे, रिलायंस को केजी बेसिन के केवल एक चौथाई हिस्से पर काम करना था, लेकिन पीएसी कॉण्ट्रैक्ट के ख़िलाफ़ जाकर रिलायंस ने समूचे बेसिन में काम शुरू कर दिया और सरकार ने इसमें कोई टोका-टाकी तक नहीं की।

देश की जनता पहले से ही रिलायंस की मुँहमाँगी क़ीमत 4.2 डॉलर चुका रही है, और अब भाजपा सरकार इसे बढ़ाकर 8.4 डॉलर करने की हरी झण्डी दे चुकी है। मज़े की बात यह है कि बांगलादेश को यही गैस करीब 2 डॉलर में दी जाती है। देश की प्राकृतिक सम्पदा को रिलायंस को सौंप देने में मनमोहन सरकार से लेकर नरेन्द्र मोदी सरकार ने सारे नियम-कायदों को ताक पर रख दिया और अब अपने ही सार्वजनिक उपक्रम के लिए दोगुने दाम पर गैस ख़रीदने को भी तैयार हो गयी। इसका ख़ामियाजा आम जनता को बढ़ी हुई क़ीमतों के रूप में भुगतना होगा। यह पूरा सौदा यह दिखाता है कि पूँजीवाद में सरकारें पूरी तरह पूँजीपति वर्ग की मैनेजिंग कमेटी मात्र होती हैं। इससे साबित होता है कि मोदी सरकार का एजेण्डा भी मनमोहन सरकार के एजेण्डे को ज़्यादा मजबूती से लागू करना ही है। आने वाले दिनों में नवउदारीकरण की नीतियों को पूरी ताक़त के साथ लागू किया जायेगा। जल, जंगल, ज़मीन, खदान पूँजीपतियों को लूट के लिए सौंपे जायेंगे और इसके विरोध को दमन के ज़रिये कुचला जायेगा। मोदी सरकार भारत के कथित विकास के लिए जो दस साल का समय माँग रही है, उसका असली मकसद है जनता की क़ीमत पर पूँजीपतियों का विकास। अब हम मेहनतकशों को सोचना है कि क्या हम अपने शोषण की बेड़ियों के और कसने का इन्तज़ार करेंगे या इसे तोड़ने के उपक्रम में अभी से जुटेंगे।

- संजय

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006